



केदारनाथ सिंह के काव्य में सामाजिक चेतना

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की एम० फिल०

उपाधि के लिए प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबन्ध

1988

निर्देशक :

डॉ० अजब सिंह

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०
रीडर, हिन्दी विभाग

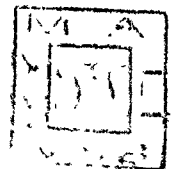
प्रस्तुतकर्ता :

धर्मेंश कुमार शर्मा

एम०ए० [अंग्रेजी, राजनीति,
हिन्दी] बी०एड०

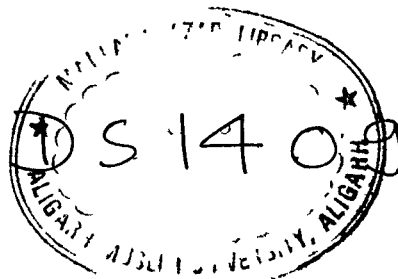
हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।





DS1409



C.

2302
G

प्राक्कथन

स्वर्णाक्षरों से लिखित इतिहास के पृष्ठों
का जब हम अध्ययन करते हैं, तो मान होता है कि इतिहास एक तथ्य का
जोता-पागला गण्य प्रस्तुत करता है। जब जब युग में उसकी आवश्यकता-
नुसार परिवर्तन हुआ तब तब साहित्य ने भी उसके अनुरूप अपने स्वरूप को
परिवर्तित किया कभी उसका अक्षरण करके तो कभी उसे नव दिशा प्रदान
करके। स्पष्ट है कि साहित्यकार का प्रत्येक कदम संघर्ष का कदम होता
है। दूसरे शब्दों में, संघर्ष ही रचनाकार की चेतना का उत्पन्न है। परिवर्तन
जीवन और साहित्य को सहजता से स्वाभाविकता है। परिवर्तन बिना
जीवन के लिए सत्यता के बंधन अपने परिधि में समाहित किने हुए रहता है,
उत्पन्न ही साहित्य भी। सच्चे अर्थों में परिवर्तन जीवन और साहित्य की
वह ऊर्जा है, जो अंधकार को चीरती हुई प्राची के पदों को खोल कर फांस्की
है और एक बार पुनः अपने विकास क्रम में अग्रसर होती हुई मध्याह्न के तरुण
मास्कर की प्रसर रश्मियों के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

मूलतः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

समाज से उत्पन्न जीवन मूल्य मनुष्य को ग्राह्य है। मानव आचरण तथा
उनकी जीवन-चेतना साहित्य का वास्तव्य है। परिवेश द्वारा प्रदत्त भाव
परम्परा से छुटकर मनुष्य प्रकृति के अंगभूत मूल्यों का वास्तव्य कला में नहीं

हो सकती है। कोई भी दृष्टि, जो सच्चे अर्थों में दृष्टि है, वह तो मनुष्य की तरह प्रज्वलित हो मानवता का मार्ग प्रशस्त करती है। वह समाज के गर्भ से जन्म लेती है। वह दृष्टि तो हमारे हृदय का एक निज चेतन प्रकाश बनकर प्रगट होती है।

हम जिसे समाज में जन्म लेते हैं, मरते हैं, खाते हैं, पीते हैं, खेलते हैं, बड़े होते हैं, उस समाज की संस्कृति, परम्परा, भाषा, रीति-रिवाज, रहन-सहन, धर्म, वैश्वभूषण आदि के प्रभाव से हम व्यक्ति नहीं रह सकते, बल्कि इन समस्त उपादानों का प्रभाव हमारे हृदय का संस्कार होता है। हमारी कैना में जो कुछ है वह समाज प्रदत्त है। अतः ऐसी दृष्टि ही सामाजिक कैना कहलाती है। हमारा सामाजिक व्यक्तित्व हमारी कैना है। कैना का सम्पूर्ण सारतत्त्व, मूल रूप है सामाजिक है। व्यक्ति और समाज का विरोध बौद्धिक विघ्नोप है। जहाँ व्यक्ति समाज का विरोध करता है वहाँ वस्तुतः समाज के भीतर की ही एक सामाजिक प्रवृत्ति दूसरी सामाजिक प्रवृत्ति से टकराती है। यह स्थिति समाज के अतिरिक्त प्रतिरोध की पुष्टि करती है। यह व्यक्ति के विरुद्ध समाज या समाज के विरुद्ध व्यक्ति के प्रतिरोध या संघर्ष की चर्चा पर निस्तब्ध है।

सामाजिक कैना निज चेतन स्व परिवेश के बालोक से बालोपित है। कविवर केदारनाथ गिह की रचनार्थ सामाजिक कैना है अनुप्राणित है। कविवर गिह प्रमुक्ताः प्रगोत्कार है। प्रगीत जब लोक कैना से जुड़ जाता है तो वह सामाजिक कैना का वाहक बनता है। नयी कविता के कवियों की शृंखला में केदारनाथ गिह एक ऐसी हस्ताक्षर है, जिनकी प्रगीतात्मकता लोक-कैना से सम्पृक्त है। यही कैना कविवर गिह

की वैयक्तिक कौनो सामाजिक कौनो के धरातल पर प्रतिष्ठित करती हैं। लोक-कौनो इंग्लैंड में स्वच्छन्दतावादी कौनो की निम्नस्तरीय प्रवृत्ति मानी जाती है परन्तु जर्मन आलोचना में लोक-कौनो स्वच्छन्दतावाद की उच्चतम प्रवृत्ति मानी जाती है। इसलिए केदारनाथ गिह के प्रीतियों में लोक-कौनो स्वच्छन्दतावाद है नवस्वच्छन्दतावाद की यात्रा है। वैयक्तिकता में सामाजिकता की समन्वित रूपान्तर की प्रवृत्ति है। इस दृष्टि है हिन्दी कविता के इतिहास में केदारनाथ गिह रचनाधर्मी के रूप में एक मौलिक हस्ताक्षर है।

सामाजिक कौनो मूलतः ऐक्यतात्मक स्तर पर सामाज्यवादी यथार्थ है जुड़ा होता है। इसलिए गौकी ने सामाज्यवादी यथार्थवाद की व्याख्या के क्रम में इसे क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद भी कहा है। यह क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद अपने व्यापक रूप में केदार नाथ गिह की कविताओं में द्रष्टव्य है।

सामाजिक कौनो अवधारणा के स्तर पर वर्णित: मार्क्सवादी चिन्तन है जोड़ कर ही व्याख्यायित किया जाता है, परन्तु आज के इस वैश्विक युग में चिन्तन, गतिशील एवं प्रवर्धमान है। आज जब हमारे सामने युग का सामूहिक अचेतन का गिद्वान्त सामने है। इस रंभ में सामाजिक कौनो के घटक के अनेक रूप सामने आये हैं। जैसे- फेन्टेसी, प्रीति, मित्र, आज-विश्व, आदिम-प्रवृत्तियां इत्यादि। यद्यपि ये मनोवैज्ञानिक घटक हैं, लेकिन इनके द्वारा सामाजिक कौनो की अभिव्यक्ति की जाती है? इसकी व्याख्या युग के सामूहिक अचेतन के क्रम में सम्पनी जा सकती है। इनके द्वारा सामाजिक कौनो की अवधारणा के क्रम में चिन्तन

का एक नया आयाम उभरा है - यही इस शोध-एथना का प्रतिफल है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में सामाजिक केतना का सिद्धान्त विस्तृत रूप में व्याख्यायित किया गया है। इस अध्याय में सामाजिक केतना का स्वरूप, सामाजिक केतना की प्रकृति, सामाजिक केतना के क्षेत्र, सामाजिक केतना के रूप, सामाजिक केतना के प्रकार तथा सामाजिक केतना के अंतः-प्रति-रचनाओं की प्रमुख विशेषताओं का सम्यक् चित्रण किया गया है।

द्वितीय अध्याय में कविवर केदारनाथ गिह के व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है। इस अध्याय में कवि के व्यक्तित्व की गहरी, प्रकृति से गहन स्नेह, लोक जीवन से गहन सम्पृक्ति वादि तत्त्वों का निरूपण किया गया है।

तृतीय अध्याय में कविवर केदारनाथ गिह के कृतित्व का परिचय दिया गया है। प्रयोगशील कविता के जनक 'कवेय' के सम्पादन में प्रकाशित तोमरा-सम्पद में संगृहीत रचनाओं के पश्चात् कविवर गिह द्वारा रचित 'ओ विस्तुल अभी', 'जमीन फल रही है', 'यहाँ से देखो' तथा 'काल में साँस' जैसी मौलिक कृतियों का परिचय इस अध्याय में दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में केदारनाथ गिह की रचनाओं में सामाजिक केतना को अन्वेषित किया गया है।

पंचम अध्याय में कविवर केदारनाथ गिह की रचनाओं में सामाजिक केतना विषयक निष्कर्ष दिया गया है।

प्रसूत शोध प्रबन्ध वादरणीय गुरुवर डा०
अजय सिंह , रीडर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
के कुशल निर्देशन का शुक्र है । समय समय पर उक्ति परामर्श व प्रेरणा प्रदान
कर जो स्फूर्ति प्रदान की उसके प्रति वाजीवन शदावनत रहूँगा । वादरणीया
भाभी जी श्रीमती मोहिनी सिंह के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ,
जिन्होंने समय समय पर प्रोत्साहन देकर इस कार्य की गतिशीलता प्रदान की ।

विभागाध्यक्ष प्रो० खीन्द्र प्रसाद , प्रो० के०
पी० सिंह , प्रो० नजीर मुहम्मद, प्रो० विश्वनाथ शुक्ल , डा० पी० बी०
शर्मा , डा० कुल सैन शर्मा नीहार एवं डा० रामेश्वर दयाल आदि सम्स्त
विद्वान् गुरुजनों का आभार प्रदर्शन करता हूँ, जिन्होंने मेरी शोध-यात्रा में
अमूल्य रुकावट देकर अनुगृहीत किया ।

प्रो० डा० एम० पी० सिंह, संस्कृत विभागा-
ध्यक्ष, ए० एम० ए० , अलीगढ़ , प्रो० जी० पी० गुप्ता, अंग्रेजी विभागाध्यक्ष,
दिगम्बर कालिज, डिबाई , डा० आर० पी० सिंह, मनोविज्ञान विभाग,
श्री वाष्णीय कालिज, अलीगढ़ का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने क्रमशः संस्कृत, अंग्रेजी
तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी मेरी कठिनाइयों का तत्काल समाधान कर , इस
शोध-साधना की पूर्णता में पर्याप्त सहायता प्रदान की ।

जिन मनीषी विद्वानों के सत्परामर्श एवं
पुस्तकों ने मुझे विशेष रूप से लाभान्वित किया है, उनमें प्रो० केमरी कुमार ,
फटना , डा० कुमार विमल , फटना , प्रो० नाम्दार सिंह, दिल्ली , प्रो०
रामेश्वर लाल सण्डेलवाल , सीनीफा, प्रो० त्रिभुवन सिंह, काशी, प्रो० रमेश

कुन्तल मेघ , अप्पुत्तार , प्रो० शशिभूषण गिषल , रौस्तक , प्रो० तारक नाथ बाली , दिल्ली , डा० नोन्द्र , दिल्ली , प्रो० प्रेम शंकर तथा डा० निर्मला जैन , दिल्ली के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

परम वादरणीय श्री ज्ञान प्रकाश गोविल , प्राचार्य , जनता एण्टरप्राइजिट कालिज, हैरा , जलीगढ़ तथा सम्स्त वाचार्य बन्धुओं का कृणी हूँ, जिनकी प्रेरणा मुझे अन्वेषण के मार्ग पर अग्रसर करने में मेरा समर्थ रही है ।

ममतामयी मां, पितृवृत्त्य अग्रज श्री लुशी राम शर्मा वादि सम्स्त वात्मीयकों का कृणी हूँ, जिन्हें वाशीष्ठा है यह कार्य पूर्ण हुआ है । जीवन सहचरो श्रीमती ऊषा शर्मा की चिर मान साधना ने भी इस कार्य की पूर्णता में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है । परम स्नेही रौष्टि, शालिनी तथा रश्मि की इस साधना- रत रहने के कारण उतना स्नेह प्रदान न कर पाया, जितना उन्हें मिलना चाहिये था ।

मौलाना वाजाद पुस्तकालय, जलीगढ़ के सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष श्री शिव दत्त शर्मा , श्रीमती विजय गोविल , मैड राकिम अली , वाजीद साहब वादि का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने पुस्तक सम्बन्धी सहायका प्रदान कर इस कार्य की सुगमता प्रदान की है ।

अन्त में उन सम्स्त सुधी रक्ताकारों तथा सम्पदाओं को भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके विचारों एवं पुस्तकों ने इस कार्य को अन्तिम पड़ाव तक लाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है । शोधार्थी उन सम्स्त ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने इस पुनीत कार्य की पूर्णता में बाहृति प्रदान की है ।

विनीत
धर्मेन्द्र कुमार शर्मा

विषय-सूची

प्राक्कथन

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय : सामाजिक चेतना : स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ

1- 69

सामाजिक चेतना का स्वरूप

समाज, व्यक्ति और समाज, चेतना

सामाजिक चेतना

सामाजिक चेतना के प्रकार

सामाजिक चेतना के स्तर

सामाजिक चेतना के रूप

काव्य में सामाजिक चेतना का वैशिष्ट्य

द्वितीय अध्याय : केदार नाथ गिह : व्यक्तित्व

70 — 76

तृतीय अध्याय : केदार नाथ गिह : कृतित्व

77 — 93

चतुर्थ अध्याय : केदारनाथ गिह के काव्य में सामाजिक चेतना

94 — 149

पंचम अध्याय : उपसंहार

150 — 155

सहायक संदर्भ ग्रन्थ

156 — 173

प्रथम अध्याय

सामाजिक चेतना : स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ

सामाजिक चेतना का स्वरूप -

समाज, व्यक्ति और समाज, चक्कना

सामाजिक चेतना

सामाजिक चेतना के प्रकार

सामाजिक चेतना के क्षेत्र

सामाजिक चेतना के रूप

काव्य में सामाजिक चेतना का वैशिष्ट्य

सामाजिक चेतना - स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ

व्यक्ति समाज की रूढ़ि है। अतः व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रकटित सामाजिक चेतना का उत्पन्न समाज है। समाज ही व्यक्ति में सामाजिक चेतना निर्धारित करता है। सामाजिक चेतना मानव की समाज से सम्बन्धित ज्ञानात्मक मानववृत्ति, सामाजिक व्यवहारों का ज्ञान, समाज से सम्बन्ध रखने वाली मानव मन की वह शक्ति है, जिसके माध्यम से मनुष्य समाज के आन्तरिक। बाह्य तत्त्वों का अनुभव करता है। सामाजिक चेतना का क्रियास्थल मानव है, किन्तु उसका प्रेरक है समाज।

राष्ट्रीय चेतना की लेकर चलने वाली कविताओं में जब सामाजिक चेतना का प्रवेश हुआ तब उसमें प्रगतिशील तत्त्व आये। प्रगतिशीलता के पहले दौर में सामाजिक चेतना के परिणामस्वरूप कवियों ने समाज के पिछड़े वर्ग पर दृष्टि डोड़ायी और उसे अपनी महानुभूति दी।^१ अतः सामाजिक चेतना के स्वरूप की विस्तार से समझने से पूर्व आवश्यक दृष्टिगोचर होता है कि समाज, व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध तथा चेतना के पहलुओं पर कला-कला विचार किया जाये।

समाज

सामाजिक जीवन कोई वस्तु अथवा मूर्त तथ्य नहीं है बल्कि एक निर्माण व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहारों, क्रियाओं और पारस्परिक सम्बन्धों से होता है। ये सम्बन्ध और क्रियाएँ समझनी

नहीं होते, बल्कि इनको अनेक नियमों के द्वारा व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न किया जाता है। ये सम्बन्ध चाहे पिछड़े हुए समूहों के हों अथवा सम्य समूहों के, ये सभी सम्बन्ध मिलकर एक व्यवस्था का निर्माण करते हैं और इसी व्यवस्था को संक्षेप में हम 'समाज' कहते हैं। इस प्रकार समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समाज एक वस्तु व्यवस्था है। समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है बल्कि सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। सामाजिक सम्बन्धों का कोई स्थूल रूप नहीं होता, वे वस्तु होते हैं इसलिए समाज भी वस्तु है। इसी आधार को लेकर विद्वान् समाजशास्त्री 'राइट' का कथन है- "समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है। यह समूह के सदस्यों के बीच स्थापित सम्बन्धों की एक व्यवस्था है।" जिस प्रकार व्यक्ति का जीवन एक वस्तु नहीं बल्कि जीवित रहने की एक प्रक्रिया मात्र है उसी प्रकार समाज को भी एक वस्तु नहीं कहा जा सकता, बल्कि वास्तव में यह सम्बन्ध स्थापित करने की एक प्रक्रिया है। जब समाज शब्द का प्रयोग हम व्यक्तियों के किसी समूह के लिए करते हैं तब हमारा अभिप्राय केवल किसी उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु संगठित एक स्थायी समूह है होता है। समाज स्थायी होता है क्योंकि इसका निर्माण करने वाले सम्बन्ध सदैव बने रहते हैं चाहे वे सम्बन्ध संगठित हों अथवा विघटित। इस प्रकार समाज-शास्त्रीय अर्थ में समाज पूर्णतया एक वस्तु धारणा है।

समाज केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं

१- जी० के० जेम्स- समाज की प्रकृति पृ० ६०

२- Though society is a real thing, it means an essence, a state or condition, a relationship and is therefore, necessarily an abstraction.'

- Wright- Elements of Sociology, Page 7

है वल्कि बहुत से जीवधारियों में भी सामाजिक विशेषताएं पायी जाती हैं। मेकाद्वर का कथन है, 'जहां कहीं भी जीवन है, वहीं समाज भी है।' समाज का निर्माण जागरूक सम्बन्धों के द्वारा होता है और जहां भी ये सम्बन्ध पाये जाते हैं वहीं समाज का निर्माण हो सकता है। हर दृष्टिकोण से मानव के अतिरिक्त अनेक दूसरे जीवधारियों में भी समाज जैसी व्यवस्था पायी जाती है। उदाहरणार्थ- कंवेरा जाति की चींटी में रानी चींटी अन्य चींटियों से सैकड़ों गुना बड़ी होती है। उसकी इच्छा से सभी चींटियां वस्तु का संग्रह व वितरण करती हैं और स्थान परिवर्तन करती हैं। ये सभी विशेषताएं एक सामाजिक व्यवस्था के ही समान हैं। विकसित पशुओं में यथा हाथियों के समूह में आश्चर्यजनक सामाजिक विशेषता परिलक्षित होती है। उसका जंगल में बिहार करना, क्षेत्रों में घूमना, शक्ति प्रदर्शन करना और बच्चों का पोषण करना विलकुल मानव समाज के ही समान होता है।

यद्यपि अन्य जीवधारी भी समाज से मिलती जुलती विशेषताएं प्रदर्शित करते हैं लेकिन इन समूहों में मानसिक जागरूकता की स्थिति मनुष्य से बहुत कम होती है। अन्य सभी प्राणियों में यह जागरूकता यान्त्रिक होती है। इसके विपरीत मनुष्य में अनुभवों और विचार शक्ति के द्वारा जिस जागरूकता का विकास होता है वह बहुत उच्च कौटि की है। अतः मानव समाज की विशेषताएं पशु समाज से इतनी पृथक् हो जाती हैं कि दोनों में तुलना करने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। संस्कृति ज्ञान-चेतना की प्रस्तुति है। इसलिए समाजशास्त्रियों ने मनुष्य को विवेकशील प्राणी माना है। विवेकशीलता ही मनुष्य की अन्य जीवों से

पृथक् करती है ।

समाज फायों की गति का हो एक विशेष स्वरूप है । इसका उदय गति के भौतिक स्वरूपों के प्रचुर मात्रा में विकसित हो जाने तथा विशेषतया इसके जैविक स्वरूपों के सुसंरित होने के परिणाम स्वरूप होता है । समाज के निकटतम पूर्वज पशुओं के मुण्ड रहे हैं जो बाहार, सैक्स, संरक्षण तथा अन्य प्राकृतिक पशु-समूह के अन्तर्गत क्रियाओं से युक्त एक जैविक समूह के रूप में उद्भूत हुए थे ।

उक्त वर्णित पशु-समूह भ्रम के प्रत्यक्ष प्रभाव तथा अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किये गये कार्य कलाओं द्वारा उन्नत रूप विकसित होकर मानव के प्रथम स्वरूपों में उद्भूत हुए । पशु-समूहों द्वारा उनका उक्त कार्यकलाप जो अन्तर्गत अन्तर्गत प्राकृतिक अवस्था में था, वही भ्रम तथा कार्यकलाप उनके मानव के रूप में उद्भूत होने का बीजार था । पशु-समूहों की यह भ्रम क्रिया एकदम प्राथमिक दर्जे की थी । कभी बाहार की लोच में, कभी शत्रुओं से अपने संरक्षण के लिए की गयी स्वाभाविक क्रिया के दौरान इन पशु समूहों के अधिक विकसित हिस्सों में से किन्हीं में कुछ प्राकृतिक वस्तुओं (पत्थर, लकड़ी का टुकड़ा आदि) का प्रयोग अपनी रक्षा के बीजार के रूप में किया । इसी प्रकार की वास्तविक तथा वास्तविक क्रिया के दौरान विकसित पशु समूहों में इन बीजारों का क्रमशः प्रयोग बढ़ा ।

इन क्रियाओं के सकारात्मक परिणाम भी निकलने लगे जो इन समूहों में तत्सम्बन्धी स्वाभाविक कार्य और वास्तव का रूप बनाने लगे । यह एक महत्त्वपूर्ण अवस्था थी जब पहली बार प्राकृतिक

१- २०पी० शेफ़रलिन- दि फिलासोफी आफ मार्किस्ट एण्ड लेनिनिस्ट

पृ० २५७

२- वही , पृ० २५८

वस्तुओं द्वारा संरक्षण तथा जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इनका बाजारों के रूप में प्रयोग करने की प्रक्रिया ने उन फल-फूलों में एक बादल का रूप धारण कर लिया। प्रारम्भ में यह क्रिया अस्थायी ढंग की थी, लेकिन बाद में इन क्रियाओं की उपयोगिता सिद्ध हो जाने पर इनका महत्त्व उनके जीवन तथा अस्तित्व हेतु बढ़ गया।

प्रकृति तथा मनुष्य के बीच होने वाली प्रक्रियाओं में "जिसमें मनुष्य स्वयं अपने तौर पर, अपने तथा प्रकृति के बीच भौतिक-क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं को प्रारम्भ करता है, विनियमित करता है और नियन्त्रित करता है।" श्रम का भौतिक आचरण हमारे द्वारा देता जा सकता है, यह श्रम ही है जो अस्तित्व तथा विकास की प्रक्रिया में फलार्थ की गति को नया स्वरूप प्रदान करता है। सर्वोपरि श्रम द्वारा ही फल-समूहों से मानव समाज की भिन्नता निश्चित होती है। श्रेय श्रम को ही जाता है कि मनुष्य ने प्रकृति से पृथक् अपना अस्तित्व ग्रहण किया तथा श्रम द्वारा ही मनुष्य ने प्रकृति का स्वामी बनकर उसे अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अधीनस्थ बनाया। **नोट:** वास्तविकता यह है कि समाज की उत्पत्ति अत्यन्त पैदा भौतिक व्यवस्थाओं, अन्तर्क्रियाओं तथा अन्तर्सम्बन्धों के माध्यम से हुई। समाज की उत्पत्ति की यह प्रक्रिया अन्तर्सम्बन्धित लोगों द्वारा भौतिकी, रासायनिक तथा जैविकी प्रक्रियाओं के साथ भौतिकी, रासायनिक तथा जैविकी नियमों के अन्तर्गत हुई है।

सामाजिक सम्बन्ध तीन प्रकार के होते हैं -

-
- १- कार्ल मार्क्स- एंगेल्स - अध्याय प्रथम पृ० १७३
 - २- एफ० एंजिल्स- डाब्ल्यूडब्ल्यू आफ नेचर पृ० १७६

व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच, व्यक्ति तथा समूह के मध्य तथा समूह और समूह के मध्य। उक्त वर्णित सम्बन्ध प्रत्यक्ष चक्षुषों से देखने की वस्तु नहीं हैं। इनको केवल अनुभव किया जा सकता है। अतः प्रस्तुत सम्बन्ध पूर्ण नहीं हो सकते। समाज मनुष्यों की एकत्र राशि का नाम नहीं है बल्कि समूह के लोग बापसी अन्योन्याधित सम्बन्धों के ताने-बाने में बुने या बंधे रहने के कारण समाज नाम दिया जाता है। इसी तथ्य का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए समाजशास्त्री गिन्सबर्ग का कथन है -

“ समाज ऐसे व्यक्तियों का संग्रह है जो कुछ सम्बन्धों वषा व्यवहार की विधियों द्वारा संगठित हैं तथा उन व्यक्तियों से भिन्न हैं जो इस प्रकार के सम्बन्धों द्वारा बंधे हुए नहीं हैं वषा जिनके व्यवहार उनसे भिन्न हैं।”

गिन्सबर्ग के कथन से स्पष्ट होता है कि विभिन्न समाजों को एक दूसरे से पृथक् करने का आधार उनके सामाजिक सम्बन्धों की भिन्नता ही है। साथ ही गिन्सबर्ग का कथन यह भी स्पष्ट करता है कि समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है बल्कि उनके बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों की व्यवस्था है।

समाज को अधिक वैज्ञानिक रूप प्रदान करते हुए टालकट पारसन्स का कथन है, “ समाज को उन मानवीय सम्बन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साधन और साध्य के सम्बन्ध द्वारा क्रिया करने से उत्पन्न हुए हों, चाहे वे यथार्थ हों

 १- Society is the collection of individuals united by certain relations or modes of behaviour which mark them off from others, who do not enter into these relations or who differ from them in behaviour.

- Morris Ginsberg-Sociology, p. 59

अथवा प्रतीकात्मक।^१ अर्थात् सभी प्रकार के सम्बन्ध समाज का निर्माण नहीं कर सकते, बल्कि समाज का निर्माण उन्हीं सम्बन्धों के द्वारा होता है जो किसी क्रिया के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए हों। इस प्रकार उक्त परिभाषा में क्रिया शब्द का विशेष महत्त्व है। हमारे सभी व्यवहार क्रिया में नहीं होते, जो किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु साधन के रूप में किये गये हों क्रिया कहलाते हैं।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री रूटर का कथन है कि
 “समाज एक वर्तमान धारणा है जो एक समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों की सम्पूर्णता का बोध कराती है।^२” अर्थात् सामाजिक अन्तर्क्रियाएँ तथा सामाजिक सम्बन्ध ही समाज के निर्माण का वास्तविक आधार हैं। व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु उस पर जो विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक दबाव पड़ते हैं उन्हीं की व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।

समाज की अवधारणा को व्यक्त करते हुए मैकावर लिखते हैं, “समाज रीतियाँ, कार्यविधियाँ, अधिकार व पारस्परिक सहायता, जैके समूहों तथा उनके विभाजनों, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों तथा स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था है। इस सदैव परिवर्तित होने वाली तथा जटिल व्यवस्था को ही हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक संबंधों का जाल है जो सदैव परिवर्तित होता रहता है।^३”

१- Talcott Parsons, *Encyclopaedia of Social Sci*, Vol, 14, p. 231

2. E.B. Ruter, *Handbook of Society* p 157

3. Maciver, R.M. and Page, C.H. *Society* p. 3.

मैकाइवर ने अपने मत में केवल यही नहीं बताया है कि समाज सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल मात्र है। बल्कि उन बाधारों को भी स्पष्ट किया है, जिनके द्वारा ये सम्बन्ध एक व्यवस्थित सामाजिक ढाँचे का निर्माण करते हैं।

इस सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि समाज का तात्पर्य एक ऐसी वृहत् व्यवस्था है जो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों, नियन्त्रण की प्रणाली तथा व्यवहार के ढंगों में धीरे-धीरे अपने आप विकसित हो जाती है। समाज की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह जैसे-जैसे परिपक्व होता जाता है इसमें जटिलता बढ़ती जाती है। यही कारण है कि आदिम समाज अपनी प्रकृति में बहुत सरल थे जबकि सम्य समाज अत्यधिक जटिल होते जा रहे हैं।

× व्यक्ति और समाज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य को केवल सामाजिक प्राणी कह देने से ही हमारी जिज्ञासा का समाधान नहीं हो जाता। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य किस अर्थ में सामाजिक प्राणी है? वास्तविकता यह है कि जन्म के समय बच्चा मात्र एक जैविकीय प्राणी होता है। अर्थात् एक शारीरिक स्वरूप को छोड़कर इस समय उसके अन्तर्गत कोई सामाजिक विशेषता नहीं होती। यदि प्रारम्भ में माता-पिता एक विशेष संस्कृति तथा सामाजिक नियमों के अनुसार बच्चे को विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का प्रशिक्षण देना प्रारम्भ न करें तो सुनिश्चित रूपेण बच्चे का कोई भी व्यवहार सामाजिक नहीं बन सकेगा। वह समा-

जिन व्यवहारों और मानवीय विशेषताओं से वंचित रह जायेगा। ऐसा बच्चा न कभी यह सीख पायेगा कि समूह में दूसरे व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाये तथा न यह कि समूह में कौन से कार्य करना उचित हैं तथा कौन से कार्य सामाजिक दृष्टि से वर्जित हैं। बच्चे में इन सभी गुणों का विकास "सामाजिक सीख" की प्रक्रिया द्वारा होता है तथा यही प्रक्रिया "समाजीकरण की प्रक्रिया" कहलाती है। वस्तुतः समाजीकरण की प्रक्रिया के आधार पर व्यक्ति तथा समाज के वास्तविक सम्बन्धों को समझा जा सकता है।

समाज तथा व्यक्ति का विकास सम्बन्धी नियम अन्यान्याश्रित हैं अर्थात् समाज और व्यक्ति दोनों ही एक दूसरे के विकास के लिए आवश्यक हैं। बिना समाज के व्यक्ति का विकास उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार बिना व्यक्ति के समाज का। ऐसी स्थिति में समाज और व्यक्ति को एक दूसरे पर निर्भर मानना ही अधिक उपयुक्त होगा। इसके बावजूद भी व्यक्ति की अपेक्षा समाज को ही कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि "जन्म के समय बच्चा केवल एक जैविदीय प्राणी होता है। वह न तो सामाजिक होता है और न ही समाज विरोधी। यह समाज ही है जो बच्चे को एक जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है।" प्रसिद्ध दृष्टिकोण से व्यक्ति के जीवन में समाज के महत्त्व की अवहेलना नहीं की जा सकती। इसी आधार को लेकर विद्वान् समाजशास्त्री मैकावर का कथन है कि - "समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाला कोई

भी सिद्धान्त न तो पूर्णतया व्यक्तिवादी हो सकता है और न ही समाज-वादी, क्योंकि समाज और व्यक्ति एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और एक दूसरे पर आश्रित हैं।^१

सामाजिक जीवन की भावनावादी व्याख्या के कारण मनुष्य के सारतत्त्व को परिभाषित करना असम्भव हो जाता है। मार्क्सवाद पूर्व के तथा वर्तमान भावनावादी दार्शनिकों ने इस समस्या को ऐसी क्लृप्ति वादशी मानव के आधार पर समाधान करने की चेष्टा की जो उनके अनुसार वर्गी है विरत तथा कुछ प्रकृति-प्रदत्त, शाश्वत एवं अपरिवर्त्य मानवीय गुणों से सम्पन्न था। परन्तु समाज है क्लृप्ति वादशी मानव जैसी परिकल्पना पूर्णरूपेण व्यर्थ है। मनुष्य को समाज से कभी क्लृप्ति नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसकी उत्पत्ति तथा विकास का निरूपण समाज के अन्तर्गत ही होता है। अतः मनुष्य पर समाज की क्लृप्ति छाप पड़ना अनिवार्य है। लेनिन ने ठीक ही लिखा है, "कौड़े समाज में रहते हुए समाज से स्वतन्त्र नहीं रह सकता।"^२

समाज व्यक्ति के निर्माण पर निश्चित प्रभाव डालता है, परन्तु समाज का रूप भी परिवर्तनशील है और अपने युग विशेष के विशिष्ट पहलुओं द्वारा चारित्रित होता है। सामाजिक सम्बन्धों की परिणति समाज में ही सम्भव है। सामाजिक सम्बन्ध मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं- व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच, व्यक्ति तथा समूह के बीच और समूह तथा समूह के बीच। ये सम्बन्ध क्लृप्ति होते हैं। अतः समाज भी क्लृप्ति

१- No one can be an absolute individualist any more than anyone can be absolute socialist, for the individual and society interact on one another and depend on one another.

- Maciver and Page - Society p 43

२- वी० आर्दे० लेनिन- क्लैविटड वर्क्स पृ० ४८

हैं। इन सम्बन्धों को अनुभव किया जा सकता है।

व्यक्ति का अस्तित्व समाज से विलग नहीं हो सकता। जिस समय बच्चा जन्म लेता है पूर्ण रूप से असहाय होता है। उसको उसकी माँ दूध पिला कर विभिन्न प्रकार से रख-रखाव कर पोषित करती है। अनेक प्रकार के वन्य जीवों ज़ासि दतरों से परिवार में उसकी रक्षा होती है। उसके व्यक्तित्व का विकास होता है तथा वह सही वर्षों में मानव समाज में रह कर ही बन पाता है।

हर जादमी का जीवन निश्चित जैविकी क्रम के अनुसार चलता है, वह जन्म लेता है, प्रांढावस्था पर पहुँचता, बूढ़ा होता और मर जाता है। मानव की जैविकी विशेषताओं के कारण ही बच्चे इतने अधिक दिनों तक अपने माँ-बाप पर निर्भर करते हैं। मृत्युओं को खाने पीने और विश्राम करने, अपनी कामवापना पूरी करने आदि की जैविकी आवश्यकताएँ होती हैं। हर जादमी का निरालापन उसके शारीरिक सामर्थ्य, उसके विशेष स्वभाव आदि से सम्बद्ध होता है। समाज में मृत्युओं में लिंग-भेद, आयु और नस्ल का फर्क होता है जिसका आधार जैविकी है। सामाजिक वातावरण या मृत्यु के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। कोई व्यक्ति चूँकि एक निश्चित स्थान में और एक निश्चित समय में जन्म लेता है इसलिए उसमें तथा एक निश्चित सामाजिक, राष्ट्रीय आदि वातावरण में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, और यह चीज किसी हद तक उसके व्यक्तिगत विकास, उसके मरिण्य के स्वरूप को पूर्ण निश्चित करती है। निस्संदेह सामाजिक वातावरण ही मृत्यु के व्यक्तित्व को बनाता है। सातिस जैविकी दृष्टि से भी मृत्यु का अस्तित्व समाज के बाहर एक निश्चित भौतिक

और सांस्कृतिक वातावरण के बाहर नहीं होता और न सामाजिक गुणों का विकास मनुष्य में समाज में अवस्त ही होता है। वह बचपन से ही समाज पर आश्रित रहता है। अपने जीवन के एक तिहाई भाग में मनुष्य प्रत्यक्ष रूपेण दूसरे मनुष्यों पर निर्भर करता है, क्योंकि वह उनकी देख-रेख, उनके द्वारा सिखाने-फिखाने, आवश्यकता पूरी कराने बिना जिन्दा नहीं रह सकता। शेष जीवन में उसे अपनी ज़रूरत की सभी चीजें लोगों से लेने देने के जरिये मिलती हैं। इसके अलावा उसकी खालिस जैविकी ज़रूरतों (उन ज़रूरतों का तो कहना ही क्या, जो आगे चलकर उसके सामाजिक विकास के दौरान में पैदा होती हैं) को पूरा करने के सारे सामान तथा उनकी पूरा करने की विधि और साधन का उत्पादन समाज में होता है। और अन्तिम बात यह कि बौद्धिक रूप से भी वह अन्य मनुष्यों पर निर्भर करता है क्योंकि उन्हीं से वह अपनी भाषा सीखता है, ज्ञान प्राप्त करता, अधीकारों और कर्तव्यों की धारणा ग्रहण करता और सदाचार के नियम और माफ़ण्ड प्राप्त करता है। “ वास्तव में समाज से मनुष्य सिर्फ यही नहीं सीखता है कि जीवन कैसे व्यतीत किया जाये, बल्कि उसी से कार्य करना भी सीखता है। ”

“ व्यक्ति और समाज पृथक् नहीं किये जा सकते इसलिए व्यक्तिगत तत्त्व सामाजिक तत्त्वों पर और सामाजिक तत्त्व व्यक्तिगत तत्त्वों पर अपना प्रभाव डालते हैं। ” उदाहरण के लिए प्रेरणाएं व्यक्तिगत होती हैं परन्तु उनकी पूर्ति समाज में ही सम्भव है। अतः सामाजिक मूल स्व मान्यताएं उस वैयक्तिक प्रेरणा को और परिणामस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

१- प० कैल्ले और प० कोबात्सोन - ऐतिहासिकी मौलिकवाद पृ० ३२१

२- जी० कै० अग्रवाल - समाजशास्त्र पृ० ६९

३- कन्याम दास रस्तोगी - आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान पृ० १६

व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं ।

चेतना की उत्पत्ति

चेतना यद्यार्थ के मनोवैज्ञानिक प्रतिबिम्बन का उच्चतम स्वरूप है जो जन्तुओं के विकास की एक निश्चित अवस्था में विशेषतः तन्त्रिका तन्त्र के उदय के बाद हुआ । यह परिवर्तनीय है तथा निरन्तर विवर्धित होता है ।

पशुओं की मनोवैज्ञानिकी गुण का मानव चेतना में रूपान्तरण श्रम पर अवलम्बित है । इसकी जुड़े पशुओं के प्रतिवर्ती क्रियाओं में है, ऐसे पशुओं के जिन्होंने प्राकृतिक वस्तुओं का प्रयोग सम्बन्धित लक्ष्यों को प्राप्त करने में किया, जिनकी उन्हें जीवों की कतिपय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु महती आवश्यकता थी । उदाहरणार्थ- पशुओं से लेकर मानव तक ने डण्डा, गोजार बादि का प्रयोग अपने लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किया । हथियारों का आविष्कार भी उन्होंने सुरक्षा सम्बन्धी लक्ष्य पूर्ति हेतु किया । मनुष्य के पूर्वज पशुओं में इस प्रवृत्ति के विकास ने क्रमशः प्रतिवर्ती क्रियाओं को चेतन-क्रिया के रूप में बदलने तथा उनके द्वारा विशेषतः निर्मित यन्त्रों द्वारा अपने माहौल को बदलने की नवीन क्रिया को निर्धारित किया । इस प्रकार इन सम्बन्धों द्वारा एक सकीकृत स्कार्ड- समाज के रूप में उनका विकास हुआ । इस स्कार्ड को बनाने वाले व्यक्तियों की क्रिया में एक निश्चित मात्रा में समन्वय , उनके उदय, कार्यकलाप और विकास हेतु आवश्यक था । इस प्रक्रिया के अन्तर्गत समान लक्ष्यों तथा उद्देश्यों के बारे में समझदारी , सूकबूक, लक्ष्य प्राप्ति हेतु कार्यों का विभाजन और एक साथ कार्य से जुड़े व्यक्तियों के बीच

परस्पर विचारों का आदान प्रदान होने की बात आवश्यक थी। इस सम्बन्ध में एग्ल्स का विचार स्वर्था समीचीन जान पड़ता है। एग्ल्स ने लिखा, “संनैप में मानव जो विकसित हो रहा था, ऐसी विन्दु पर पहुँच गया था जहाँ उनमें है सभी को दूसरे है कुछ कलना था।”

प्रारम्भिक विकास के दौर में मुख्य उपयुक्त ध्वनियों अथवा सक्तों के माध्यम से विशेष प्रक्रियाओं, उनके गुणों तथा कार्य-कलापों को उद्गित करने लगा। इस प्रकार शब्दों की एक व्यवस्था के माध्यम से यथार्थ के प्रतिबिम्ब का विशुद्ध रूप मानवीय स्वरूप है। पशु अपने स्वर्ग-गिर्द के यथार्थ का प्रतिबिम्ब यथार्थ ही के सक्तों के माध्यम से करते हैं। इसी शरीर विज्ञान के विशेषज्ञ “आल्बान पाव्बोल” ने “सक्तों के इस नियम की- पशुओं तथा मनुष्यों दोनों में समान बताते हुए इसे प्रथम सक्त व्यवस्था माना। मनुष्यों में विशेष सक्त व्यवस्था होती है जिसका माध्यम शब्द होते हैं जो विशेष वस्तुओं अथवा भौतिक गणार की अभिव्यक्ति के सक्त का कार्य करते हैं। पाव्बोल ने इसे द्वितीय सक्त व्यवस्था का नाम दिया है।”

(स) कैना का सार-तत्त्व

कैना का निकटतम सम्बन्ध समाज तथा श्रम है। का: श्रम पदार्थ की गति के सामाजिक स्वरूप का एक आवश्यक पहलू है। यद्यपि इसका अस्तित्व समाज में रहने वाले मनुष्यों के कैना के रूप में

१- एफ० एग्ल्स- डाइरैक्टिंस आफ नेचर पृ० १७३

२- ए० पी० शैप्लिन- दि फिलोसोफी आफ मार्क्सिस्ट एण्ड लेनिनिस्ट

मुखरित होता है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत अनुभवों को सांस्कृतिक तथा भौतिक मूल्यों के रूप में समाज तक पहुँचाता है हस्तान्तरित करता है।

चेतना में बाह्य जगत् प्रतिबिम्बन के रूप में मौजूद रहता है जो मानव मस्तिष्क में उसकी आन्तरिक क्रिया के परिणाम-स्वरूप मुखरित होता है। यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने वाले इन्हीं चित्रों के सम्पूर्ण योग है मनुष्य का ज्ञान निर्मित होता है। यथार्थ के इस अमूर्त चिन्तन के आधार पर ही मानव उसकी प्राप्ति के लिए अपने लक्ष्य निश्चित करता है तथा अपने व्यवहार और कार्य को इन लक्ष्यों के अधीन लाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव की चेतना का एक बड़ा पहलू उसका उद्देश्य पूर्ण होना है। मार्क्स का कथन है, “एक मकड़ी ऐसी कार्य सम्पन्न करती है जो एक बुनकर के कार्य से मिलती-जुलती है तथा एक शब्द की मक्खी अपनी कौशिकाओं की रचना के कार्य से अनेकों निर्माण विशेषताओं को लब्धित कर सकती है, लेकिन जो चीन बुरे से बुरे आर्कीटेक्ट और उत्तम मछु मक्खी में भेद उत्पन्न करती है वह यह कि एक आर्कीटेक्ट वास्तव में निर्माण करने के पहले अपनी कल्पना में उस निर्माण वस्तु को पहले ही साकार कर लेता है। हर भ्रम प्रक्रिया भी समाप्ति पर हमें वह परिणाम मिलता है जो भ्रमिक की कल्पना में कार्य प्रारम्भ होने से पहले ही विद्यमान था।”^१

यथार्थ का यह अमूर्त चिन्तन अपने में केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इसके द्वारा लक्ष्य निर्धारण की क्रिया देखी जाती है। इसके अन्तर्गत हम चेतना की सृजनात्मक तथा कल्पना में उभरी वस्तु को

कार्यान्वित करने की क्रिया को देखते हैं। मानवीय चेतना का यह एक विशिष्ट गुण है।

“ चेतना मानव मस्तिष्क में यथार्थ का प्रति-बिम्ब है, जिसके साथ वह समझ जुड़ी है कि वस्तुगत जगत् में क्या घटनाएँ घट रही हैं, इसी के साथ इस समझदारी पर आधारित सत्य निर्धारण तथा वह चिन्तन क्रिया भी जुड़ी है जो भौतिक जगत् में सम्बन्धित परिवर्तनों की दिशा सुनिश्चित करती है तथा इसका समाज के हित में सृजनात्मक रूपा-न्तर सम्भव बनाती है। ”

(ख) चेतना और पदार्थ के अन्तर्सम्बन्ध

चेतना मनुष्य के भौतिक परिवेश के साथ अन्विष्ट रूप से सम्बद्ध है तथा यह स्पष्ट है कि भौतिक परिवेश के अभाव में चेतना की क्रियाशील मानना नितान्त भ्रम है। चेतना का अस्तित्व हर जगह और हमेशा नहीं रहा है, वरन् इसका उदय पदार्थ के विकास की एक विशेष अवस्था में और केवल अति संघटित भौतिक वस्तुओं में होता है। इस प्रकार चेतना अनिवार्य रूपेण पदार्थ से जुड़ी है। परन्तु दूसरी ओर पदार्थ चेतना पर निर्भर नहीं है। क्योंकि पदार्थ का अस्तित्व चेतना की उत्पत्ति से पहले से ही रहा है। मनीष में कह सकते हैं कि चेतना की क्रियाशीलता हेतु मनुष्य का मस्तिष्क ही अपने में पूर्ण नहीं वरन् भौतिक परिवेश बहुत अनिवार्य है। भौतिक अवस्था के बिना चिन्तन सम्भव नहीं। तभी तो एंगेल्स ने ठीक ही लिखा है कि,

“ मानव मस्तिष्क में चेतना की उत्पत्ति भौतिक पदार्थ से होती है। मानव मस्तिष्क के अतिरिक्त चेतना का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। चेतना मानव

मस्तिक की ही अभिव्यक्ति है।^१

हमके अतिरिक्त चेतना का स्थान इसलिए भी मुख्य नहीं है क्योंकि यह वस्तुगत जगत् की प्रतिच्छाया तथा वस्तुगत रूप में अस्तित्ववान् वस्तुओं उनके गुण धर्मों तथा सम्बन्धों के प्रतिबिम्ब है। इस प्रकार भौतिक वस्तुओं से स्वतन्त्र चेतना का अस्तित्व नहीं है, क्योंकि प्रतिबिम्बित वस्तुओं के अस्तित्व के बिना उगरे स्वतन्त्र प्रतिबिम्बन का कोई अस्तित्व सम्भव नहीं है। लेनिन ने लिखा है, “मनुष्य की चेतना न सिर्फ वस्तु जगत् को प्रतिबिम्बित करती है बल्कि उसका सृजन भी करती है।”^२ अर्थात् मानवीय चेतना सृजनशील है तथा पदार्थ और प्रकृति के विकास में चेतना की भूमिका अर्थात् ग्राहीय है। चेतना के प्रभाव से सृष्टि बढ़ती नहीं है। डा० देवराज ने ठीक ही लिखा है, “----- मानवीय चेतना वस्तु सत्ता को ज्यों का त्यों प्रतिफलित नहीं करती। चेतना सृजनात्मक होती है।”^३

(घ) भौतिक तथा काल्पनिक

मानवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में चेतना का उदय मस्तिक में किन्हीं दैहिक प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है। लेकिन वस्तुगत जगत् से सम्बन्धित पदार्थ का जो प्रतिबिम्बन हमारे होता है उससे हमको यह दृष्टिगोचर होता है कि चेतना काल्पनिक है।

चेतना में इस काल्पनिक की अभिव्यक्ति इस प्रकार होती है कि जो चित्र इस चेतना को निर्मित करते हैं उनमें न तो उन

१- वि० अफनास्येव- मार्क्सवादी दर्शन पृ० ७

२- लेनिन- संग्रहीत रचनाएं भाग ३८ पृ० २१२

३- डा० देवराज- प्रकृति का दार्शनिक विवेचन पृ० १६७

यथार्थ वस्तुओं का गुण धर्म प्रतिबिम्बित होता है वरि न ही उनमें तन्त्रिका तन्त्र सम्बन्धित दैहिक प्रक्रियाओं का गुण ही फलकता है जो चेतना के जन्म लेने का बाधार है ।

कार्ल मार्क्स ने स्पष्ट किया है कि कल्पना भौतिक पर बाधारित होता है । उन्होंने लिखा है, “ मानव मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित भौतिक जगत के प्रतिबिम्बन तथा उस पर बाधारित परिवर्तित चिन्तन स्वरूपों के अतिरिक्त ‘ काल्पनिक ’ वरि कुछ नहीं है । ”

(ड०) चेतना वरि दन्दात्मक भौतिकवाद

दन्दात्मक भौतिकवाद की दान्यता के अनुसार चेतना पदार्थ के ऐतिहासिक विकास का प्रतिफलन है । यह सबसे ज्यादा संगठित रूप की विशेषता है । मानव का मस्तिष्क चेतना का भौतिक बाधार स्वरूप जनक है । सबसे ज्यादा अधिक संगठित पदार्थ है मानव मस्तिष्क इसलिए चेतना उसी की विशेषता है ।

सामान्यतः चेतना विविध दृग्गोचर प्रकृति वरि मानव के बाध्यात्मिक एवं भौतिक जीवन की (सहज अनुभूति, विचार, स्वैग, स्वैदन, रदिया, धार्मिक विश्वास, अवधारणाएँ, ज्ञान, राजनैतिक प्रत्यय) प्रक्रियाओं का कुल योग है । क्तः मनुष्य के मस्तिष्क की सम्पूर्ण प्रक्रियाएँ, व्यवहार बादि ही मूल रूप से चेतना है ।

१- कार्ल मार्क्स, कैपीटल, ब्याच १ पृ० २६

२- यू० ए० सेरिन - फन्डामेंटल आफ डाइलेक्टिक्स पृ० ७७

३- यू० ए० सेरिन, .. पृ० ७५-७६

भौतिकवादी दृष्टि

फलार्थ का विशेष परिवर्तन है। परिवर्तन का सार धर्मों से है। इसी परिवर्तन का विशिष्ट और उच्चतर रूप हा फलार्थ है। ऐतिहासिक विकास के उत्पाद के रूप में फलार्थ मात्र के गुण की अपेक्षा विशेषतः मंगलित फलार्थ का- मानव मस्तिष्क का गुण है। इस प्रकार फलार्थ अपनी उत्पत्तियों में गौण है क्योंकि यह गति के उच्चतर रूपों के प्राकट्य पर निर्भर है^१।

दन्तात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण के अनुसार सभी भौतिक वस्तुओं का आवश्यक- सार भौतिक है। यह सम्बन्धों तथा प्रक्रियाओं आदि का ऐसा समुच्चय है जिसका अस्तित्व मानव चेतना से स्वतन्त्र है। आवश्यक सार आन्तरिक रूप से प्रक्रियाओं से जुड़ा हुआ है तथा अपने सार तत्त्व को केवल इन प्रक्रियाओं में, इन्हीं प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रकट करता है। दूसरी ओर प्रक्रियाएँ भी आवश्यक सार से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं तथा आवश्यक सार के बिना उनका अस्तित्व सम्भव नहीं है। लेनिन ने आवश्यक सार तथा प्रक्रिया के अन्तर्सम्बन्धों पर बल देते हुए लिखा था ,
“ आवश्यक सार का उदय होता है। यही उदय आवश्यक है। ”^२

इस प्रकार जहाँ दन्तात्मक भौतिकवाद सामान्य रूप से फलार्थ और चेतना के अन्तर्सम्बन्धों के नियमों को निश्चित करता है , तथा ऐसा करके दर्शन के एक भौतिक प्रश्न का समाधान उपरिष्ठ करता है , ऐतिहासिक भौतिकवाद इसी समस्या को समाज सन्दर्भ में लागू करके सामाजिक अस्तित्व तथा सामाजिक चेतना के बीच अन्तर्सम्बन्धों को स्थापित करता है।

१- यू० ए० लेरिन - फन्डामेंटल आफ डाइलेक्टिक्स पृ० ८२

२- वी० आर्दे० लेनिन- क्लेक्टिड वर्क्स , पृ० २५३

चैतना मस्तिष्क में

प्रकृति के एक वर्ग का गुण है। इसलिए वास्तविक
अपने भीतर से पैदा नहीं किये जा सकते। सही विचार का संचार
बाह्य जगत् का सम्पर्क आवश्यक होता है। इस कारण ज्ञान का बाधक
मन का प्रत्यक्ष अनुभव है।

चैतना को स्वतन्त्र तथा गतिशील माना गया
है। चैतना को परतन्त्रता को वैधियों में बाध नहीं किया जा सकता।
क्योंकि चैतना जीवित प्राणियों में होती है। अतः उसे गतिशील की संज्ञा
देना ज्यादा न्याय संगत होगा। वर्तमान ज्ञान की शक्त क्रियाओं को चैतना
कहकर पुकारा जाता है। चैतना व्यक्ति सापेक्ष, सूक्ष्म, स्वतन्त्र एवं गति-
शील वस्तु है।

चैतनाशील प्राणी मन को चैतना या शक्ति
के कारण आन्तरिक तथा बाह्य बातों का सम्पर्क ज्ञान प्राप्त करता है या
गतिविधियों का अनुभव ग्रहण करता है। तभी तो चैतना को मन की शक्ति
कहा गया है।

✓ " चैतना मन को वह वृत्ति या शक्ति है जिससे
जीव या प्राणी के आन्तरिक (अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि) और
बाह्य (घटनाओं) तत्त्वों या बातों का अनुभव या ज्ञान होता है । "

चैतना तथा जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

१- डा० रामविलास शर्मा- सांख्य और सौन्दर्य पृ० ४

२- डा० अश्व नारायण त्रिपाठी- नयी कविता में वैयक्तिक चैतना पृ० ९

३- राम चन्द्र वर्मा- मानक हिन्दी कोश (दूसरा संस्करण) पृ० २७४

है। चेतना मस्तिष्क का गुण धर्म है। “ चेतना जीवन से पूर्ण कोई
हैस्वरीय देन नहीं है। वह प्रण है सम्पूर्ण मानव बौध के क्रमिक विकास
में व्याप्त क्रमवृत्ति का^१। ”

वस्तुतः चेतना का निर्धारण तथा निर-
पण जीवन द्वारा ही होता है। अर्थात् मानव अपने ज्ञान, मन, होश तथा
बुद्धि से चेतना का निर्धारण करता है। अतः जीवन और चेतना एक ही
शिक्के के दो पहलुओं की तरह है।^२

चेतना का मनोविश्लेषणीय स्वरूप

मानसिक क्रिया के स्तर

फ्रायड ने कहा कि मानसिक क्रियाएँ
तीन स्तरों पर सम्पादित होती हैं-

- १- चेतन
- २- अचेतन तथा
- ३- अचेतन

चेतन स्तर पर वे मानसिक एवं शारीरिक
क्रिया से जाती हैं जिनके प्रति हम जागरूक होते हैं तथा जिनका स्मरण
प्रत्यास्मरण (RECALL) किया जा सकता है। इनका प्रयोग
वातावरण को समझने में किया जाता है।

अचेतन के अन्तर्गत वे क्रियाएँ निहित हैं

१- लम्बीकालीन स्मरण- नयी कविता के प्रतिमान पृ० ६६

२- कार्ल मार्क्स- रफ० रॉबिन्स- क्लैम्पिटड वर्क्स पृ० ३७

जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान तो किया जा सकता है किन्तु चेतन की अपेक्षा जोर अधिक लगाना पड़ता है। चेतन तथा अचेतन भी विनाश सामग्री वास्तविकता से रंगति रखती है।

अचेतन के अन्तर्गत वह समस्त विनाश सामग्री आती है जिनकी न तो हमकी जानकारी होती है और न फिर पर हमारा ऐच्छिक नियन्त्रण ही होता है। उसके सम्बन्ध में हमें सामान्य ढंग से तब तक जानकारी नहीं हो सकती जब तक किंगी विशेष ढंग (सम्मोहन, मुक्त-गलचय, प्रोजेक्टिव टेक्नीक) का सहारा न लिया जाये। अचेतन बर्तन, समय एवं स्थान के प्रभाव से परे है। सम्मोहन तथा सम्मोहनीयता स्थिति, स्वप्न, दिन प्रतिदिन की भूलें, नशे की स्थिति का प्रलाप तथा मानसिक रोग आदि अचेतन के अस्तित्व की प्रमाणित करते हैं। हमारी मानसिक क्रियाओं का शीटा एन बर्तन चेतन और शेष बहुत बड़ा अचेतन है।

हमारे जीवन के दुःख तथा अमान्य विचार जो पहले बन जाते हैं साथ ही साथ इस की अनेक छ्छार तथा बावेंग जो कभी भी चेतन नहीं है उनकी भी स्थिति अचेतन में होती है। अचेतन मन की तुलना एक कूरे से की जा सकती है जिसमें सतह पर कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। किन्तु पानी के भीतर मांति मांति के जीव जन्तु छिपे रह सकते हैं। अचेतन में स्थित अनेक अमान्य अवदमि छ्छार सदा के लिए ही अचेतन में नहीं पड़ी रहती वरन् वे बेश बदलकर स्वप्नों, मानसिक रोगों, दिन प्रतिदिन की भूलों आदि के रूप में व्यक्त होती हैं।

व्यक्तित्व के गतिशील अंग- छह, छंगी तथा छपर छंगी- इन विभिन्न स्तरों को अपना कार्य तौर बनाने हैं। छह

बावेग प्रधानतः अचेतन है। वह अधिकारितः चेतन स्तर पर कार्य करता है तथापि इसका बहुत बड़ा भाग अचेतन तथा अचेतन में स्थित रहता है। एगो भाँति सुपर एंगो तीनों स्तरों पर कार्य करती है। हाँ, यह वह भी अपेक्षा चेतन कम अचेतन तथा अचेतन अधिक होती है। ये स्तर व्यक्तित्व के माँगोस्तिक पन्ना हैं जिनमें इह, एंगो तथा सुपर एंगो के मध्य अन्तर्द्वन्द्व घटित होते हैं। हमारा समस्त व्यवहार इन चेतन, अचेतन तथा अचेतन अन्तर्द्वन्द्वों के निराकरणों के ठाँव का परिणाम है।

क्रायड है पृथक् होकर काहें का ने व्य-
क्तित्व के विश्लेषणात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन करत व्यक्त किया कि अचेतन की कौन स्तरें हैं। सबसे ऊपरी स्तर 'व्यक्तिगत अचेतन' है जिसका निर्माण व्यक्ति द्वारा अव्यक्त, विरक्त तथा अचेतन रूप में लीखी गयी विचार-सामग्री द्वारा होता है। इस व्यक्तिगत अचेतन में भी गहरी अन्य स्तर हैं जिसे वह 'सामूहिक अचेतन' का नाम देता है। यह सामूहिक अचेतन मानव जाति के एकत्रित अनुभव है, जो वंशानुक्रम के आधार पर हमें परम्परागत रूप में अपने माता-पिता में प्राप्त होते हैं। यह अन्य जैविक गुणों की भाँति ही परम्परागत होते हैं, जो एक पीढ़ी में दूसरी पीढ़ी तक आदिम युग से चलता चला आ रहा है और चलता रहेगा। सामूहिक अचेतन में ही व्यक्तिगत चेतन तथा अचेतन का विकास होता है। जो अनुभव कई पीढ़ियों में लगातार दोहराया गया है वह मानस में स्थायी रूप में एकत्र हो जाता है। इस विचार को युंग, 'आर्कटाइप्स' की संज्ञा देता है। युंग के अनुसार कुछ आर्कटाइप्स जो विकासक्रम में हमें प्राप्त हुए हैं, वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उन्हें व्यक्तित्व में पृथक् व्यवस्थाओं (मिस्टिफ) के रूप में सम्झा जा सकता है। ये हैं- परसोना (Personae)) रनीमा

खं स्नीप्स (*anima and animus*) तथा *shadow* ^१

युग का 'सामूहिक अचेतन' वादिम स्मृतिगो के मूल रूप है। सभी समाजों में प्रचलित वादिम युग की दन्त-कथाएँ, लोकगीत तथा अन्य प्रवाद इस जातीय या सामाजिक अचेतन के अस्तित्व के प्रमाण हैं जो मानव जाति के प्रारम्भ से लेकर अब तक विराग्त के रूप में अनेक व्यक्ति में विद्यमान हैं।

युग के कुलर व्यक्ति का समस्त मानसिक व्यापार चेतन तथा अचेतन का सम्मिश्रित रूप है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हम चेतन में जो नहीं हैं, अचेतन रूप से हम वह ही हैं। यदि हम चेतन रूप से बहिर्मुखी हैं तो अचेतन रूप से अन्तर्मुखी हैं। छोटी भाँति यदि चेतन में व्यक्ति विचारक प्रकार का है तो अचेतन में भावना प्रकार का होगा। अर्थात् समस्त मानसिक क्रियाएँ उसके चेतन तथा अचेतन में विद्यमान हैं।

सामाजिक चेतना

चेतना मस्तिष्क का धर्म है। चेतना का क्रियास्थल मनुष्य का मस्तिष्क है। जितने भी जीवित प्राणी इस सृष्टि पर हैं उन सभी में चेतना उनके मस्तिष्क में निहित होती है। मस्तिष्क में निहित चेतना ही सामाजिक चेतना का वाहक बनती है। मनुष्य ही सामाजिक चेतना का वाहक बनती है। मनुष्य ही सामाजिक चेतना का प्रमुख केन्द्र है। अतः अन्य जीवित प्राणिनों में सामाजिक चेतना का अभाव होता

१- An archetype is a universal thought form (idea) which contains a large element of emotion.

- Hall and Lindzey-Theories of Personality p.82

हैं। मनुष्य की चेतना सामाजिक चेतना है पूर्णतः जुड़ी होती है। काः सामाजिक चेतना मनुष्य की समाज है सम्बन्ध रखने वाली मानव मन की वह शक्ति है, जिसके माध्यम से मानव समाज से आन्तरिक, बाह्य तत्त्वों को आत्मसात् करता है तथा सामाजिक व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त करता है। सामाजिक चेतना है आक्रान्त साहित्यकार विद्रोही होता है। समाज-वादी यथार्थवादी साहित्य यथार्थ चित्रण का नहीं, अपितु यथार्थ भावना का साहित्य होता है। समाजवादी यथार्थवादी साहित्यकार जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण- निर्धारित दृष्टि को स्वीकार करता है। इसलिए वह अपनी रचना में विशिष्ट (टाइप) चरित्र की नियोजना करता है। विशिष्ट चरित्र की जीवन गाथा को सम्पूर्ण भूमिका में उतारना चाहता है। सम्पूर्ण भूमिका के चरित्रांकन से फलस्वरूप उसकी चेतन एवं अचेतन वृत्तियों का चित्रांकन स्वाभाविक है।^१

प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी ए० जी०

युंग ने चेतना की व्याख्या मानव को चित्तोप प्रक्रियाओं से सम्बन्ध में की। अपने सामाजिक चेतना को अपने अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया है। उन्होंने अचेतन चित्त की तरह मानव चेतना के भी दो रूप स्वीकार किये हैं - व्यक्तिगत तथा सामूहिक। सामूहिक चेतना नैतिक प्रतिमानों, सामाजिक विचारों, सामाजिक तथ्यों, सामाजिक विश्वासों आदि से सम्बन्धित होती है। प्रसिद्ध सामूहिक चेतना का आधार भी सामूहिक अचेतन के साथ निम्न है।

युंग के अनुसार बाप बिम्ब अपनी जिवन्तता

१- डा० जगजि सिंह- नवस्वच्छन्दतावाद पृ० ८०-८१

२- डा० जीलेन्ड जेकीवी- सम्पत्ति । सिम्बल पृ० ११०

तो देने पर अर्थात् स्वर या मूल हो जाने पर सामाजिक विचारों के रूप में
रूप ले जाते हैं। इसलिए यह भी सामाजिक चेतना का वास्तविक अन्तर्भाव है।

युग ने अकेलन की सीमा रेखा को विस्तारित करते हुए व्यक्तिगत एवं सामूहिक अकेलन के रूप में विभाजित करता है।
क्रास्नो का यह निष्कर्ष कि हर स्वप्न या स्वर्न के पीछे काम भावना प्रधान
होती है। इस सन्दर्भ में युग मूल प्रवृत्तियों के साथ साथ बाध प्रवृत्तियों
को भी स्वीकार करता है और अकेलन की स्थितियों में मिश्रणीय एवं सांस्कृ-
तिक चेतना को भी स्वीकार करता है। फलतः वह साहित्य या कला में
सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को भी अभिव्यक्ति को अकेलन को स्थिति
में स्वीकार करता है। फलस्वरूप कविता में मिश्रणीय चेतना, प्रतीकीकरण,
सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना को स्थापित करना सामूहिक अकेलन के रूप
में वर्णित है। मिश्रणीय चेतना, व पुनः सामाजिक चेतना को जाग्रत करने
में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती है। मिश्रणीय चेतना ऐतिहासिक चेतना
को तभी विरम करती है लेकिन अपने स्वभाव एवं सांन्दर्य बोधात्मक कारणों
से, सामाजिक चेतना को जगाती है। वस्तुतः मिश्रणीय चेतना सामाजिक
चेतना को विस्तार देती है।

✓ सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक डा० नाम्बर
मिह वैयक्तिक चेतना को समाज सापेक्ष मानते हुए सामाजिक चेतना का मूल-
धार तथा विस्तार मानते हैं। चिन्तन या विचार या गिद्धान्त और मान्य-
तार स्वयं विचारक ने अपनी स्वतन्त्र हो जाया करते हैं कि वह एक बात

- १- डा० जय मिह- वायुनिक हिन्दी कविता में नवस्यञ्छन्दावाद ,
पटना विश्वविद्यालय को डी० लिट० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध,
१९८१, प्राक्कथन पृ० ६

- २- डा० रमेश कुन्तल मैथ- व्यापारी सांन्दर्य विज्ञान पृ० ४६७

को भूल ही जाता है कि जिस दिमाग ने वे निकली हैं, वह दिमाग एक जोता जागता, एक ऐसा तथ्य है जिसकी निश्चित सामाजिक स्थिति है। इसलिए जाम तार है केतना इतनी स्वतन्त्र अस्तित्व रखने लगी है कि कभी कभी यह भ्रम होने लगता है कि जो विचारक है वह विचार का जनक नहीं है बल्कि स्वतः विचार ही उसका जनक है।^१ वस्तुतः व्यवस्थात्मक प्रवृत्ति में रचनाकार अपने केतना का विस्तार करता है और वह समाज शास्त्रीय ज्ञान मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी सामाजिक केतना का विस्तार करता है। वैचारिकता का निर्माण समाज साधन तो है ही क्योंकि समाज की गतिविधियाँ जीवन को वैचारिकता से जोड़ने में सहायक होती हैं और यह उममें सम्बल प्रदान करता है। केतना वस्तुतः सामाजिकता का विस्तार है। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक युंग ने भी वैयक्तिक व्यक्तन के साथ साथ सामूहिक व्यक्तन को भी स्वीकार किया है और ज़ीग्न फ्रम में वाचविम्व, धार्मिक केतना, प्रीतिक, सांस्कृतिक केतना तथा गिष्कीय केतना के द्वारा सामाजिक केतना को और भी हमको ले पाते हैं। इसलिए सामाजिक केतना अपने में वैचारिक प्रति-बद्धता के साथ साथ मनोवैज्ञानिकता को भी अपने परिधि में घेरती है। इस प्रकार सामाजिक केतना की पूर्ण व्याप्ति व्यवस्थात्मक एवं मनोवैज्ञानिक रूप में होती है। मार्क्सवादी जालोजक केतना की पहचान में वैयक्तिकता को अनिवार्य मानता है और यह वैयक्तिक केतना वस्तुतः मनोवैज्ञानिक चिन्तन से भी जुड़ती है और ज़की हो युंग ने अपने कलात्मक मनोवैज्ञानिक व्याख्या में सामूहिक व्यक्तन कहते हैं और इस प्रकार एक मार्क्सवादी चिन्ता तथा मनो-वैज्ञानिक चिन्ता की विचारधारा एक जगह मिलती है।

१- डा० नाम्बर सिंह- विचारधारा और साहित्य, दस्तावेज, अक्टूबर

“ मार्क्सवादी गान्ध्याशास्त्र सामाजिक चेतना के रूपों और उनके वार्षिक आधार के बीच सम्बन्धों के प्रति कोई यांत्रिक समझदारी अपनाने का विरोधी है । 'कोई भी सामाजिक संरचना ऐसे तत्त्वों की जो परस्पर क्रियाशील होती हैं तथा जिनमें प्रत्येक तत्त्व एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं, ऐसी जटिल तथा गतिशील प्रणाली होती है जिनमें वार्षिक कारण ही निर्णायक होते हैं । इसके बावजूद कला और साहित्य वार्षिक प्रणाली की निष्क्रिय उपज नहीं होते बल्कि वे सामाजिक चेतना के विभिन्न रूप- कलात्मक ग्लेस स्पेस उस सामाजिक यथार्थ पर सक्रियपूर्वक प्रभाव डालते हैं जिनमें वे उत्पन्न होते हैं । सामाजिक जीवन तथा विशेष वर्गों की विचारधारा साहित्य में यांत्रिक ढंग से प्रतिबिम्बित नहीं होती । कलात्मक गहनरीक्षा सामाजिक विकास के सामाजिक नियमों के अन्तर्गत होती है लेकिन चेतना का विशेष रूप होने के नाते उसकी अपनी विशिष्टतार तथा नियम होती है । इसलिए साहित्यिक कृतियों को सामाजिक स्वरधारों तथा सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब मानते समय उन लक्षणों को देखना परसना बहुत आवश्यक है जो इन कृतियों के महत्त्वपूर्ण मूल्य हैं । ”

मार्क्सवादी दृष्टि से यदि सामाजिक चेतना की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि पर विचार करें तो मान होता है कि सामाजिक चेतना समाज के भौतिक जीवन से सामाजिक सम्बन्धों तथा मनुष्य के कार्य-कलाप विविधता से उत्पन्न होती है ।

“ सामाजिक चेतना अर्थात् विभिन्न विचार, दृष्टिकोण, सिद्धान्त, धारणाएँ सामाजिक भावनाएँ आदि जिनकी महाकाव्य

१- डा० कुंवर पाल मिश्र : मार्क्सवादी गान्ध्याशास्त्र और हिन्दी कथा-

साहित्य (अपनी बात) पृ० १०

संमुख सामाजिक समूह तथा समाज परवर्ती जगत् का वैदिक रूप से अन्त-ग्रहण करते हैं, स्वयं अपने अस्तित्व का बोध प्राप्त करते हैं अपने समान सम-स्याओं का समाधान करते हैं, समाज के मौलिक जीवन हैं, सामाजिक सम्बन्धों तथा मनुष्य के कार्यकलाप विविधता से उत्पन्न होती हैं।^१”

सामाजिक चेतना समाज से सम्बन्धित

विभिन्न विचार, दृष्टिकोण, धारणाओं एवं भावनाओं का कुल योग है जिन्हें द्वारा मनुष्य तथा समाज निरन्तर परिवर्तनशील जगत् का वैदिक रूपेण अन्तर्ग्रहण करता है। वस्तुतः “सामाजिक चेतना जनता का आत्मिक जीवन है, वे भावनारंभ और दृष्टिविन्दु हैं जो उनके गहरे कामों में उनका पथ-प्रदर्शन करते हैं।” सामाजिक चेतना के माध्यम से मनुष्य समाज से सम्बन्धित सम्बन्धों के प्रति जागरूक रहता है। “सामाजिक चेतना भावों सिद्धान्तों और भावों, जनता को सामाजिक भावनाओं, वाद्यों और रीति रिवाजों का कुल योग है। ये सब वस्तुगत यथार्थ को मानव समाज और प्रकृति को प्रति-बिम्बित करते हैं।^३”

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वाद्यों, रीति रिवाज, भावनारंभ तथा परम्परारं सामाजिक चेतना के पृष्ठ-न होने वाले हैं।

“सामाजिक चेतना वर्ग विभेद के दृष्टि-कोण, प्रत्ययों और सामाजिक अनुभवों की सम्पन्नता है जो उसकी सामाजिक सत्ता को प्रतिबिम्बित करती है। समाज की चेतना जिसमें मनुष्य रहता है,

१- व० केल्ले और कौवात्ज़ोन- ऐतिहासिक मौलिकवाद पृ० ३६

२- वि० जफनारपेय - मार्क्सवादी दर्शन पृ० १८१

३- वही , पृ० ३३३

उसकी बाँझि दुनिया को प्रभावित करती है^१।

ए प्रकार सामाजिक चेतना विचारों, प्रत्ययों, सामाजिक कृत्यों, भावनाओं, आदर्शों, परम्पराओं व रीति-रिवाजों का समग्र योग है। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि एक समाज जेव वर्गों में विभक्त रहता है तथा प्रत्येक वर्ग की सामाजिक चेतना पृथक्-पृथक् होती है क्योंकि उनकी संस्कृति व जीवन पद्धति अलग अलग होती है।

मार्क्सवाद समाज को मुख्य रूपेण दो वर्गों में विभक्त करता है- बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग।^२ बुर्जुआ वर्ग है तात्पर्य बाधुनिक पूँजीपति वर्ग है अर्थात् सामाजिक उत्पादन साधनों के स्वामियों और उजरती श्रम का उपयोग करने वालों है। सर्वहारा है मूलतः बाधुनिक उजरती मजदूरों है जिनके पास उत्पादन का साधन कुछ का कोई साधन नहीं होता, इसलिए जो जीवित रहने के लिए अपनी श्रम शक्ति को बेचने को विवश होते हैं।^३

मार्क्सवाद की मान्यता है कि सम्पूर्ण समाज दो भागों- बुर्जुआ तथा सर्वहारा- जो विपरीत दृष्टिकोण रखते हैं- में विभक्त होता जा रहा है। दोनों ही वर्गों में प्रारम्भ है श्रुता की भावना घर घर लेती है तथा संघर्ष जन्म है ही प्रारम्भ हो जाता है। ए प्रकार ए दोनों वर्गों में पृथक्-पृथक् सामाजिक चेतना होना पूर्णरूपेण स्वाभाविक हो है।

भारतवर्ष विभिन्न जातियों, वर्ग, वर्ण ,

१- यू० ए० हेरिन - फण्डामेंटल आफ डाइरेक्टिज पृ० ६५

२- मार्क्स एंगेल्स- कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र पृ० ३५

३- यू० ए० हेरिन - फण्डामेंटल आफ डाइरेक्टिज पृ० ६५

तथा धर्मों में विभक्त हैं। काः उनके प्रत्येक वर्ग में एक ही सामाजिक केंद्र का होना पूर्ण रूपेण अवधारणाविरुद्ध हो है। जातिगत, वर्णगत तथा वर्गगत सामाजिक केंद्रों की भिन्नता लिये होती है। प्रत्येक जाति, वर्ण, वर्ग अपनी सामाजिक सत्ता के अनुसार ही सामाजिक केंद्रों की ग्रहण करते हैं। वास्तव में, व्यक्ति जिस समाज से सम्बन्धित है उसकी केंद्रों उसके आत्मिक जन्म को प्रभावित करती है। अर्थात् सामाजिक सत्ता मुख्य या प्रधान है सामाजिक केंद्रों का। सामाजिक सत्ता या सामाजिक अस्तित्व के अभाव में सामाजिक केंद्रों की कल्पना करना अपने को मृत्यु-प्राप्ति की सल मुल्यों में उत्पन्न नहीं तो क्या है? विज्ञान ही या कला चाहे दर्शन आदि में प्रगति के पहले समाज में रहने वाले व्यक्तियों को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कक्षा नितान्त आवश्यक है। यथा- उदर पूर्ति हेतु भोजन, नग्न शरीर को ढकने हेतु वस्त्र तथा सुरक्षित रूप से रात दिन किताने हेतु मकान। इस प्रकार आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मनुष्य को प्रातः से शाम तक परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम द्वारा भौतिक सम्पदा ग्रहण करता है। मनुष्य की ये सभी कार्य सामाजिक सत्ता या अस्तित्व के कारण हो करने को बाध्य होना पड़ता है। मनुष्य समस्त कार्यों को करता हो कर ले यह सम्भव नहीं है। सामाजिक अस्तित्व के कारण मनुष्य को समाज में रहने वाले अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने होते हैं। आवश्यकताओं की पूर्ति समाज के अन्य लोगों से एकत्र प्राप्त पर ही अवलम्बित है। कार्य तथा फल के आधार पर भी समाज में मनुष्यों के मध्य बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए गुरु शिष्य सम्बन्ध, अधिकारी तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध आदि। मार्क्स की ऐतिहासिक भौतिकवादी मान्यतानुसार-
 "लोगों की सामाजिक केंद्रों उसकी सामाजिक सत्ता की उपज है।" बिना

सामाजिक सत्ता के सामाजिक चेतना की उत्पत्ति अव्याभासिक है ।

ज्वा: " मनुष्य के विचार, मता और उसकी धारणाएँ- सभी में उसकी चेतना- उसके भौतिक अस्तित्व की अवस्थाएँ, उसके सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन के प्रत्येक परिवर्तन के साथ बदलती हैं । "

परिवर्तन प्रकृति का प्राण है, एक वास्तविक प्रक्रिया है । जब प्रकृति परिवर्तनशील है तो समाज का इतिहास भी परिवर्तनशील है । वाद प्रतिवाद तथा संवाद का क्रम अनवरत रूपेण चलता रहता है । अर्थात् पुरानी मान्यताएँ लुप्त होने लगती हैं तथा नवीन मान्यताएँ अपना स्थान ग्रहण करती रहती हैं । पहले मनुष्यों की सामाजिक सत्ता परिवर्तित होकर नवीन रूप धारण करती है और उसके बाद ही मनुष्यों की सामाजिक चेतना परिवर्तित होती है तथा नवीन रूप धारण करती है । उनके माय तथा विचारधाराएँ बदलती हैं । इस प्रकार ' मनुष्य की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती बल्कि उल्टे उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है । "

विचारों का इतिहास हमें सिखा और ज्या साक्षित करता है कि जिस अनुपात में भौतिक उत्पादन में परिवर्तन होता है, उम्मी अनुपात में बौद्धिक उत्पादन का स्वरूप परिवर्तित होता है ? पिछले सम्स्त युगों में एक हीज हर अवस्था में मौजूद थी- समाज के एक हिस्से द्वारा दूसरे हिस्से का शोषण । ज्वा: यह कोई बाह्य की बात नहीं है कि विगत

१- मार्क्स, एंगेल्स- कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र पृ० ६०

रूस मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन- ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० ३३४-३५

सुगों की सामाजिक चेतना अनेकानेक विविधता और विभिन्नता के बावजूद किन्हीं ऐसी सामान्य रूपों या सामान्य विचारों के दायरे में गतिशील रही हैं, जो वर्ग विरोधों के पूर्णरूपेण विद्युत् होने के पहले पूर्णरूपेण नहीं भिन्न हो सकते।

परिवर्तन नवीनता का पीतक है। यदि परिवर्तन न हो तो धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक, दार्शनिक, सामाजिक और कानून सम्बन्धी विचार, जो इतिहास के विकास क्रम में बदलते जाते हैं, जड़ता की प्राप्त हो जायेंगे, उनकी जीवन्तता तथा अस्तित्व खंडा के लिए समाप्त हो जायेगा। नवीनता तथा प्रगति का स्थापन क्रान्ति द्वारा सम्भव है। जब लोग समाज में क्रान्ति ला देने वाले विचारों की बात करते हैं तब वे केवल इस तथ्य को व्यक्त करते हैं कि पुराने समाज के बन्दर एक नवीन समाज के तत्त्व पैदा हो गये हैं और पुराने विचारों का विघटन अस्तित्व को पुराने अवस्थाओं के विघटन के साथ कदम मिलाकर चलता है।

संक्षेप में, सामाजिक चेतना किन्हीं विशिष्ट वर्ग का जातिगत जीवन, सामाजिक भावनाओं, आदतों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं, सामाजिक अनुभवों का कुल योग है। सामाजिक चेतना मनुष्यों को प्रेरणा देती है कि वे जिस समाज में रह रहे हैं उसकी वर्तमान प्रगति में अपना योगदान दें। सामाजिक चेतना मनुष्य को सामाजिक व्यवहार का पाठ सिखाती है क्योंकि व्यक्ति समाज की इकाई है। वह अकेले सामाजिक विकास नहीं कर सकता। सामाजिक चेतना व्यक्ति को सामाजिक सम्बन्धों के प्रति जागरूक बनाती है। समाज में व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होते हैं। यदि व्यक्ति उन सम्बन्धों का रस-रसताव नहीं जानता

तो उसे फु ही कहा जायेगा । सामाजिक चेतना इन क्षेत्रों में व्यक्ति की यथेष्ट सहायता करती है । मनुष्य की सामाजिक चेतना मुक्ति का वरदान-दात्री है । मनुष्य को क्षुब्धिक मुक्ति का मन्दिर सामाजिक चेतना प्रदान करती है । इस सन्दर्भ में डा० रामदत्त मिश्र का कथन पर्याप्त समीचीन है । " मनुष्य की सामाजिक चेतना उसे गुलामी का अभिशाप नहीं मुक्ति का वरदान देती है । " सामाजिक चेतना मनुष्य को जहाँ सामाजिक व्यवहार का पाठ सिखाती है वहाँ सामाजिक चेतना है मनुष्य की विचारधारा, संस्कृति आदि प्राप्त होती है । " सामाजिक चेतना है मनुष्य की वास्तविक ज्ञान संस्कृति, विचारधारा आदि प्राप्त होती है । "

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद तथा शायवाद की चर्चा नये काव्य के सन्दर्भ में कई दृष्टियों से एक विवशता है । प्रायः कहा जाता है कि नये काव्य की विभिन्न धाराएँ स्वच्छन्दतावादो काव्य की समानी प्रवृत्तियों का विरोध करती हुई सामाजिक यार्म तथा मरुमानी वास्तविक दृष्टिवाले काव्य का आग्रह करती हैं । पर समीक्षकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो यह मानता है कि हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के भीतर ऐसे तत्त्व मौजूद रहे हैं जो जागे चकर सामाजिक चेतना से अपनी संपृक्ति स्थापित करते हुए एक प्रातिवादी भूमिका का परिचय देते हैं और इसके लिए वे मरुमम नौकी के " आन्तिकारो स्वच्छन्दतावाद (रिवाल्वुशनरो रोमांटिसिज्म) का विरोध उत्पन्न करते हैं । लेखकों का दूसरा वर्ग अपनी सक्ति स्वच्छन्दता-वादो काव्य प्रवृत्तियों के निषेध में व्यय करता है और इसके विरोध में आधुनिकतावाद की विभिन्न धाराओं को स्थापित करना चाहता है । डा० देवराज शायवाद के फलन की घोषणा करते हुए स्वच्छन्दतावाद की प्राति

१- डा० देवराज मिश्र - साहित्य सन्दर्भ और मूल्य पृ० २०

२- कैलेश व कोमल पौन - ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० ३०८

शील व्याख्या को स्वीकार नहीं करते। यही नहीं, उन्होंने प्रातिवादी काव्य की भी आलोचना की।^१

डा० जय सिंह की पुस्तक 'नवस्वच्छन्दता-वाद' में भी सामाजिक कैना के क्रम में क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद की चर्चा हुई है। इसके माध्यम से सामाजिक कैना, कलात्मक विस्तार लेती है। 'हिन्दी आलोचना की बहुचर्चित पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' में मुक्तिबोध की कविता 'बन्धे' में 'के विश्लेषण क्रम में डा० नामार सिंह मुक्तिबोध की गीतों के शब्दों में क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावादी कवि बताते हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि 'बन्धे' 'को रोमान्टिक स्वप्न है उसका आधार अपने युग में विकसमान उत्थानशील शक्तियों का बोध है। कविता के अन्तिम भाग में यही उत्थानशील शक्तियाँ क्रान्ति के लिए सन्नद्ध दिखायी पड़ती हैं। वस्तुतः मुक्तिबोध की कविताओं में प्रयुक्त स्वच्छन्दतावाद सामाजिक यथार्थबोध से संपृक्त है।

सामाजिक कैना के प्रकार

मनुष्य समाज की इकाई है। मनुष्य के पारिवारिक, नैतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास में समाज की भूमिका अनिवार्य है। मनुष्य के स्वभाव की रचना कोशिका की भित्ति पर हुई है। एक ही समाज या वर्ग के अन्तर्गत रहने वाले मनुष्यों के स्वभाव तथा व्यवहार में विभिन्नता होती है। अतः मनुष्यों के स्वभाव की जाधार बनाकर सामा-

१- डा० प्रेम्शंकर- नयी कविता की भूमिका पृ० ११

२- डा० जय सिंह- नवस्वच्छन्दतावाद- नवस्वच्छन्दतावाद पृ० १ से २२५ तक

३- प्र० उदयराज सिंह- नई धारा- अग्रंत-मई १९८८, विशेषतः लेख डा० जय सिंह

बाधनिवृत्ता और नवस्वच्छन्दतावाद पृ० ६-७

जिस चेतना के निम्न प्रकार किये जा सकते हैं -

- १- क्रान्तिकारी तार्किक सामाजिक चेतना
- २- क्षुब्धतावादी सामाजिक चेतना
- ३- दृष्टीयता मंडनवादी सामाजिक चेतना
- ४- शून्यवादी सामाजिक चेतना

१- क्रान्तिकारी तार्किक सामाजिक चेतना

क्रान्तिकारी तार्किक सामाजिक चेतना का सम्बन्ध प्रत्यक्षरूपेण मात्र क्रान्ति में विश्वास रखना नहीं है। जब समाज में रहने वाले मनुष्य तत्कालीन राजनीतिक या सामाजिक व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं होते तथा एक प्रकार का छुटन व अग्रणीय रिधति में अपने को महसूस करते हैं तो पहले तर्क की क्रांटी पर तत्कालीन व्यवस्था के गुण दोषों को कमते हैं तथा जो वे बदलाव की स्थिति चाहते हैं उसके परिणाम व दुष्परिणामों को भी तर्क की क्रांटी पर करते हैं तथा जब यह महसूस होने लगता है कि अब तो तत्कालीन व्यवस्था में परिवर्तन लाना निश्चित है, तब वे क्रान्ति का आह्वान करते हैं तथा इस प्रकार जो चेतना उनमें उदित होती है, उसे क्रान्तिकारी तार्किक सामाजिक चेतना कहते हैं। प्रस्तुत सामाजिक चेतना मविष्य को पूर्णरूपेण मध्य दृष्टि रखते हुए वर्तमान परिस्थितियों के गुण दोषों पर विवेचन करती है। सन् १९१७ में इस देश में हुई समाजवादी क्रान्ति क्रान्तिकारी तार्किक सामाजिक चेतना का ही परिणाम थी।

२- क्षुब्धतावादी सामाजिक चेतना

जैसा कि क्रान्तिकारी सामाजिक चेतना की

विचारमग्न के क्षेत्र में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एक ही समाज में रहने वाले मनुष्यों के स्वभाव एक जैसे नहीं होते। स्वभाव की दृष्टि से मानवों को तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है- क्रियाशील, विचारशील तथा मीनशील। क्रियाशील वे मनुष्य होते हैं जो परिस्थिति बाने पर उसमें बाधरहित परिवर्तन हेतु तुरन्त सक्रिय हो पाते हैं। विचारशील वे मानव होते हैं जो पहले तत्कालीन परिस्थिति के परिणामों के विचार में विचारशील वे मानव होते हैं जो पहले तत्कालीन परिस्थिति के परिणामों के विचार में विचार करते हैं उसके मधिरूप के विचार में गौक्तो हैं। मीनशील वे मनुष्य होते हैं जिनकी विचारनया माशुक्ता की लहरों से धपड़े साती हुई कभी भी कगार का स्पर्श नहीं कर पाती। मीनशील कौरे माशुक होते हैं जिनकी भावना कौरे परिणाम लेने में बाधक होती है। कतः कुरुक्षेत्रावादी क्रान्ति में विश्वास नहीं रखते। कुरुक्षेत्रावादी सामाजिक केंतना शेषाण, बन्धाय, उत्पीड़न, आचार, दुराचार तथा पापाचार के विरुद्ध बाबाज उठाने में अपने को कर्मण पाती है। यह सामा० केंतना रहन ले होती है। यह ती प्रत्येक परिस्थिति में कुरुक्षेत्र होने की परिचायक है। समाज की मान्यताओं से सम्पर्कता करने की प्रवृत्ति अन्य मनुष्यों में जगाने पर बल देती है।

३- सृष्टीकता मंडनवादी सामाजिक केंतना

सृष्टीकता मंडनवादी सामाजिक केंतना

का प्राण है " पाप है घृणा करो पापी है नहीं " नामक गांधी जी के जीवन सूत्र में निहित है। प्रस्तुत सामाजिक केंतना ऐसे व्यक्ति जो बन्धाय करते हैं के विरुद्ध कार्यवाही करने का उनका उन्मूलन करने के पन्ना में नहीं है बल्कि यह ती पूर्ण रूपेण हंस्वादी है। हंस्वा प्रवृत्तिमान है। वह

प्रत्येक अन्याय, पाप या शोषण को समूलेन नष्ट करने में लगाम हँ- को आधार बनाकर चलती है। ज्ञाः कल्याचारी को लगाम करी उम्का यह नारा ऐल्वर , धर्म तथा कर्म में विश्वास के आधार पर जन्मती है। ईसा मसीह तथा गांधी जी का जीवन दर्शन वॉर कार्य कलाप सृष्टीकता मंडनवादी सामाजिक केतना के परिचायक हैं।

४- शून्यवादी सामाजिक केतना

शून्यवादी सामाजिक केतना का स्वरूप सृष्टीकता मंडनवादी सामाजिक केतना के विरुद्ध है। यह ऐल्वर, धर्म, बाडम्बर के विरौध में उत्पन्न होने वाली सामाजिक केतना है। शून्यवादी सामाजिक केतना, भाँतिक्तावादी विचारधारा के जुरूप है। यह केतना ऐल्वर में विश्वास नहीं रखती। ज्ञाः यह नास्तिक केतना है। प्रस्तुत सामाजिक केतना मृत्यु की धर्म तथा बाडम्बर से सजाकर पशु नहीं बनाती। मृत्यु की भाग्यवाद के सहारे जीवन बिताने की प्रेरित नहीं करती। प्रत्युत मृत्यु अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है तथा "कर्म ही सिद्धि मंत्र है" जैसी केतना को जन-मानस में जगाती है। कर्म के आधार पर मृत्यु की समस्त फल मिलती हैं, उम्का जीवन सुखी तथा सम्पन्न बनता है का लक्ष्य मृत्यु की देती है।

सामाजिक केतना के तौर

विज्ञान, विचारधारा वॉर सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक केतना के तौर हैं। विज्ञान सामाजिक केतना का प्रमुख स्वरूप है जो मृत्यु की प्रकृति, समाज तथा चिन्तन प्रणाली के ज्ञान के कुल

योग या प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता है। इसका मूल उद्देश्य तथा सामा-
जिक क्रियाकलाप यथार्थ का संज्ञान प्राप्त करना एवं इसके विकास व कार्य-
कलाप को शास्त्र करने वाले नियमों का फल लगाना है^१। विज्ञान प्रकृति
समाज और चिन्तन सम्बन्धी मानव की ज्ञान प्रणाली को कहते हैं। वह विश्व
को ऐसी धारणाओं, परिकल्पनाओं और नियमों द्वारा प्रतिबिम्बित करता
है, जिसकी प्रामाणिकता और सत्यता व्यावहारिक अनुभव द्वारा परखी
जाती है^२। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि विज्ञान मात्र कल्पना के
आधार पर किसी तथ्य का निरूपण नहीं करता, बल्कि विज्ञान सत्यता की
कसौटी पर कण्ठ ही उसे अन्तिम रूप देता है। बिना प्रामाणिकता के विज्ञान
किसी तथ्य को प्रस्तुत करने में पूर्णरूपेण अक्षम रहता है। विज्ञान विश्व -
प्रकृति का ऐतर्किक तथा प्रतिबिम्बित ऐसी धारणाओं, विचारों, सिद्धान्तों
आदि के रूप में करता है, जिनकी प्रामाणिकता और सत्यता व्यावहारिक
अनुभव द्वारा सिद्ध हो चुकी है तथा जिसे वर्तुणत यथार्थ की मान्यता प्राप्त
हो गयी है^३।

विज्ञान की प्रमुक्ता: दो द्वियार्द हैं - माप
और परिगणन। विज्ञान मात्राओं को माफता है जिससे उनके पारस्परिक
सहचर सम्बन्धों को खोज कर सके और उनके सहपरिवर्तन के नियमों का निरूपण
कर सके। उपर्युक्त सभी कुछ प्रयोगशाला में प्रयोग करने से सम्भव हो पाता है।

१- ए० पी० शैष्मूलि- दि फिलासफी आफ मार्किस्ट एण्ड लैनिनिस्ट

पृ० ४००

२- वि० अफनास्थेव- मार्क्सवादी दर्शन पृ० ३५३

३- ए० पी० शैष्मूलि- दि फिलासफी आफ मार्किस्ट एण्ड लैनिनिस्ट

पृ० ४००

४- ए० एफ० कील्डन- द पावन एण्ड लिमिटेड आफ गान्ध पृ० १४

वास्तव में विज्ञान यथार्थ के व्यक्तिगत ज्ञान का एक रूप है, जो सामाजिक ऐतिहासिक व्यवहार के आधार पर उत्पन्न और विकसित होता है और जो वस्तुगत जगत के नियमों और मूल पहलुओं को धारणाओं, प्रयोगों और नियमों के द्वारा तक ज्ञात रूपों में व्यक्त करता है। विज्ञान का चरम लक्ष्य नवीन अनुसन्धान करना भी है। जब जब नये आवश्यकताएँ मानवता के सम्मुख फँसने प्रवृत्त होती हैं तब विज्ञान नये नवीन प्रयोग तथा अनुसन्धान करके नवीन वस्तुओं, तथ्यों की खोज करता है तथा मानवता के कल्याण में रत रहता है। एंगेल्स का कथन यह दिशा में पर्याप्त समीचीन दृष्टिकोण होता है। “समाज के सामने जब कोई तकनीकी आवश्यकता आ खड़ी होती है तो वह आवश्यकता विज्ञान को जितना आगे बढ़ाती है उतना दूर विश्व-विद्यालय भी नहीं बढ़ पाते।”

विज्ञान प्रकृति तथा सामाजिक जीवन की प्रतिबिम्बित करता है। छा परिश्रेण्य में एभी विज्ञानों को प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के दो समूहों में विभाजित कर दिया गया है। प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा जैव तथा अजैव प्रकृति के नियम-शास्त्र गुण धर्म एवं सम्बन्धों (नियमों) का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक विज्ञानों द्वारा सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं तथा सामाजिक विन्यास (संरचना) के विकास तथा कार्यसंस्थाप को निर्दिष्ट करने वाले नियमों का अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत इतिहास, वर्णशास्त्र, दर्शनशास्त्र, सांस्कृतिकशास्त्र आदि एवं प्राकृतिक विज्ञान के अन्तर्गत

१- केंसे व कोषाख्यान- ऐतिहासिक भौतिकशास्त्र पृ० २५४

२- प्रि० अफनार्लेस- मार्क्सवादो दर्शन पृ० ३५४

मानिसों, मछलियों, पौधों, एकात्मतन्त्र, जीव विज्ञान बादि बादे हैं।
ऐसे नयेन पादियों का बहुमता पर कल्प रची हैं वही वही अभी वाव-
रका है गुणर विज्ञान की विरुद्ध करता रहते हैं।

“ विज्ञान का निमित्त निरन्तर जारी
है और यद्यपि और अधिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उन ज्ञान की प्रत्यक्ष
केवल नहीं होता बल्कि अभी प्रसार में तथा वे तमिः ज्ञान की और जारी
होती है तिर ज्ञान में लाता है। ”

वही सामाजिक विज्ञान प्रत्यक्ष तथा सामा-
जिक सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं, वे घनिष्ट रूप है वर्गी तथा वर्ग सम्बन्धों
में छुट्टे हुए हैं। इस कारण उनका उन विचारधाराओं में विज्ञान की जाता
है वही विचार धाराएं लोगों के सामाजिक व्यवस्था की एक रूप प्रेरणा है
जिसे वे मान्यता है देता है।

सामाजिक विज्ञान विज्ञान वर्ग के लोगों
की अभिव्यक्ति करते हुए प्रत्यक्ष के आधार की एकता का नष्ट करने में पूर्ण
प्रयत्न करते हैं। सामाजिक विज्ञान करता है सामाजिक विज्ञानों के ज्ञान
में लेते करते हैं और उन तरह प्रत्यक्ष के विकास की निर्दिष्ट करने का वैज्ञानिक
वाधार प्रस्तुत करते हैं।

प्राकृतिक विज्ञान प्रकृति रूप है सामाजिक
प्रकृति के बीच सम्बन्धों है तथा वर्ग सम्बन्धों में सम्बन्धित नहीं होता। प्राकृतिक

१- ए० देवरी व दीनात्मोन- देश का तमिः मांसिखाद ५० रु१-रु६

२- मांसिखादों वंश ५० वि० अफनामिः - ५० ३५३

विज्ञान वर्गों से उत्पादन के माध्यम से जुड़े होते हैं तथा यह विज्ञान उनकी सेवा करते हैं और इसी आधार पर उनका विकास होता है। आधुनिक विज्ञान सामाजिक विकास में महान भूमिका अदा करता है। विज्ञान का हस्तक्षेप आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है।^१ विज्ञान प्रभावशाली रूप में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रहा है, विकास की गति को तेज कर रहा है तथा मानव जाति की भौतिक और आर्थिक प्रगति के लिए नयी और अभूतपूर्व संभावनाएं पैदा कर रहा है।^२

विज्ञान की तरह विचारधारा भी सामाजिक चेतना के क्षेत्र की परिधि के अन्तर्गत आती है। समाज का इतिहास परिवर्तनशील है। अतः सामाजिक अस्तित्व में होने वाले परिवर्तन के साथ व्यक्तियों को चेतना भी बिना परिवर्तित हुए नहीं रहती। अतः व्यक्तियों के पुराने विचारों में नवीनता आती है। नवीन विचारों का सम्बन्ध नवीन आवश्यकताओं से होता है। समाज के वर्गों, समूहों एवं जातियों में विभक्त रहता है, जिनका सीधा प्रभाव व्यक्तियों की विचारधारा पर बिना पड़े नहीं रहता। वर्ग समाज में सामाजिक चेतना का रूप चाहे जो भी हो, वह हर दृष्टि से वर्ग स्वरूप धारण कर लेती है।^३ इसी सामाजिक के राजनैतिक कानून सम्बन्धी, कला सम्बन्धी एवं अन्य क्षेत्रों और विचारों के कुल योग को उस वर्ग की विचार धारा कहते हैं।^४ इस प्रकार विचारधारा राजनैतिक, कानून एवं कला सम्बन्धी विचारों का कुल योग है।

विचारधारा सामाजिक चेतना की एक उच्च-तर मंजिल का प्रतिनिधित्व करती है तथा मनुष्यों द्वारा अपने जीवन की भौतिक परिस्थितियों को अधिक गहराई से समझने के उपादान का काम करती है।

१- कैंटले व कोवाल जॉन - ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० २८६

२- वि० अफनास्येव - मार्क्स की दर्शन पृ० ३३४

विचारधारा का उद्देश्य मानव सम्बन्धों के सार तत्त्व को दर्शाना तथा एक सामाजिक वर्ग के दृष्टिबिन्दु से उन्हें गिना करना एवं इन सम्बन्धों को बदलने तथा कायम रखने की आवश्यकताओं को सुसंरित करना है ।

“ विचारधारा सामाजिक अस्तित्व और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं के संज्ञान का वैद्वान्तिक स्वरूप है । सामाजिक मनोविज्ञान के विपरीत , जिसे उदय स्वतः स्फूर्त ढंग से होता है, विचारधारा का विकास एक विशेष समूह द्वारा होता है, जिन्हें सिद्धान्तकार कहा जाता है । ”

विचारधारा, मनोविज्ञान से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई होती है और सामाजिक अस्तित्व के उन्हीं पहलुओं तथा प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति करती है जो मनोविज्ञान द्वारा होते हैं, पर विचारधारा उसे अधिक ठोस तथा तार्किक रूप में व्यक्त करती है । विचारधारा का उद्भव और विकास पहले से मौजूद सिद्धान्तों तथा विचारों के माध्यम से होता है । ये सिद्धान्त और विचार पहले के विकास की मजिलों के दौरान एकत्रित आत्मिक तत्त्वों पर आधारित होते हैं ।

“ विचारधारा लोगों के जीवन की मौलिक परिस्थितियों तथा उनके सामाजिक अस्तित्व को व्यवस्थित व तार्किक रूप से प्रतिबिम्बित करने वाले विचारों तथा दृष्टिकोणों के कुल योग का प्रतिनिधित्व करती है । ”

जब विचारधारा का निरूपण हो जाता

१- २० पी० शैप्पलिन- दि फिलासफी आफ मार्किट एण्ड रैनिनिट पृ० ३७०

२- वही , पृ० ३६६

हैं तो मानव मनोविज्ञान पर इसका सक्रिय प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार विचारधारा विशेष सामाजिक वर्गों तथा सामाजिक समूहों के स्वयं-सफूर्त मान्योक्तियों को केवल मान्योक्तियों में रूपांतरित करने का अन्त कर्ण जाती है।

व्यक्तियों की विचारधारा, वास्तव, बुद्धि एवं व्यक्तित्व में सम्मानता पायी जाती है। किसी विषय पर दो या दो से अधिक व्यक्तियों के विचारों को एकत्र किया जाये तो संभव है कि उनमें विभिन्नता अवश्य मिले। एक स्थान पर ब्राउन ने लिखा है कि -

“कैक प्रतिमाशाली विनिष्ठा मण्डितक वाले हुए हैं तथा प्रतिमा का विनिष्ठाता है निष्ठ सम्बन्ध है।”

कुछ विचारक मानते हैं कि प्रतिमा तो भगवान की देन है। इस प्रकार लोगों के विचारों में भिन्नता होती है। वास्तव में विचारधारा का निर्धारण सामाजिक सत्ता द्वारा ही होता है।

“विचारधारा सामाजिक चेतना का वह जग है, जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाज के समस्त उठने वाले सामाजिक कार्य-कार्यों की पूर्ति है। जोर पिनके द्वारा सामाजिक सम्बन्धों को बदलने या दृढ़ करने में सहायता मिलती है। वर्गीय समाज में विचार धारा का स्वरूप वर्गीय होता है, यानी वह विभिन्न वर्गों के भौतिक स्थितियों को बौद्धिक अभिव्यक्ति है।”

विचारधारा की उत्पत्ति उस अवस्था में

१- जे० एफ० ब्राउन- दि एन्स्कोडायामिक् आफ स्वनोर्मल विहेवियर

पृ० ४१०

२- कंस्ले व कोवाल्सोन- ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० २६२

होती है जब कभी संस्था में जनता सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए आगे बढ़ती है, जिसकी एकताबद्ध होकर सफलता के साथ कदम उठाने हेतु विचारों की एक व्यवस्था की जरूरत होती है, जिनके द्वारा उनके समान हितों की अभिव्यक्ति को और जो इन हितों के माध्यम से यथार्थ को प्रतिबिम्बित करे।^१

विचारधारा सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाली सशक्त धारा है, हम में प्रवाहमान है। इसके द्वारा विभिन्न समूहों एवं वर्गों के मध्य संघर्ष होता है, साथ ही दृष्टिकोणों एवं सिद्धान्तों का वादान-प्रदान भी होता है, क्योंकि विचारधारा का सामाजिक जीवन से निरन्तर का सम्बन्ध है।

विचारधारा में क्रमबद्धता जरूरी है तथा ऐतिहासिक विकास के लिए बहुत महत्त्व रखती है। क्रमबद्धता के बिना मनुष्य को यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने के लिए हर बार अपनी धारणाओं और प्रवर्गों को नये गिरे से निरूपित करना पड़ता है।

विचारधारा में क्रमबद्धता का अर्थ है चिन्तन सामग्री को पुराना रखना, जिसमें से इस्तेमाल वही की जाया जाता है जो उक्त वर्ग के हितों के अनुकूल हो और जिसका ठोस कार्य युग की हातों द्वारा निर्धारित होता है।^२

✓ नोट: विभिन्न वर्गों की विचारधारा उन वर्गों की सामाजिक चेतना को व्यक्त करने में पूर्णरूपेण सहायक है।

१- कैल्ले व कोवालजोन - ऐतिहासिक मार्क्सवाद पृ० २५६

२- वही, पृ० २६८

सामाजिक चेतना के क्षेत्र की परिधि में

विज्ञान और विचारधारा के साथ सामाजिक मनोविज्ञान का भी उतना ही महत्त्व है। समाज मनोवैज्ञानिक व्यक्ति का अध्ययन उसके सामाजिक विन्यास (सोशल सेटिंग) में करता है। वह अपने अध्ययन को व्यक्ति में केन्द्रित करता है। उसको मनोवृत्तियाँ, अभिप्रेरणारं, भावनारं, शिक्षण एवं प्रत्ययीकरण-पिन्हें समाज एवं समूह प्रदान करता है- व्यक्ति के मन्दर्भ में अध्ययन करता है।

शेरिफ और शेरिफ का कथन है कि

“ समाज मनोविज्ञान व्यक्तियों के व्यवहारों तथा अनुभवों का अध्ययन उन सामाजिक परिस्थितियों में करता है जो मानव व्यवहार को उत्तेजित करती हैं। ”

प्रस्तुत परिमाणों में, सामाजिक रूप से

उत्तेजित करने वाली परिस्थितियों से शेरिफ का तात्पर्य उन व्यक्तियों और समूहों से है जो उस सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के अंग हैं।

व्यवहार तथा अनुभव सदैव व्यक्तियों के

होते हैं अतः उनका अध्ययन मनोवैज्ञानिक क्रियाओं जैसे प्रत्ययीकरण, शिक्षण, स्मरण, चिन्तन, कल्पना आदि के माध्यम से होता है। परन्तु ये मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ विभिन्न सामाजिक तत्त्वों से प्रभावित होती रहती हैं। श्रेव और क्व फोल्ड ने इसी के आधार पर कहा है कि “ समाज मनोविज्ञान सामाजिक व्यक्ति अर्थात् मानव के सामाजिक व्यवहार के प्रत्येक पक्ष से संबंधित है। ”

१- Social Psychology is a scientific study of the experience and behaviour of individuals in relations to social stimulus situations.

- Sherif M and Sherif C.W. , Groups in Harmony and fashion p 14

२- धनश्यामदास रस्तोगी - आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान प्र०१६

व्यक्ति के कार्य को प्रभावित करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि दूसरा व्यक्ति बड़ा समूह प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित हो। हम बहुधा देखते हैं कि हमारे व्यवहार पर उन रुढ़ियों, परम्पराओं तथा वादों का प्रभाव पड़ता रहता है जिनका चेतन रूप में हमें ज्ञान भी नहीं होता। इन परीत कारणों से हमारा व्यवहार ही नहीं बल्कि हमारी अभिप्रेरणारं, लभ्य विचार, मान्यतारं, मनोवृत्तियां, व्यक्तित्व बादि भी प्रभावित होते हैं। हमें यह कहा जा सकता है कि सामाजिक मनोविज्ञान के विश्लेषण की स्वयं व्यक्ति न होकर कतः वैयक्तिक व्यवहार है। कतः समाज मनोविज्ञान का उद्देश्य सामाजिक व्यवहार के विकास परिवर्तन और कतः वैयक्तिक व्यवहार सम्बन्धी घटनाओं के स्वरूप को माहूम करना है।

सामाजिक मनोविज्ञान से अन्तर्गत सामाजिक अन्तर्क्रियारं, सामाजिक प्रेरणारं, सामाजिक अभिवृत्तियां, सामाजिक मनोवृत्तियां, सामूहिक मनोबल, जनमत, नेतृत्व की भावना बादि जाती है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है कतः उनके विचार और व्यवहार पर सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव अवश्य पड़ता है। जिस प्रकार व्यक्ति का व्यवहार समाज में रहने वाले अन्य व्यक्तियों के व्यवहार से अछूता नहीं रहता ठीक उसी प्रकार अन्य लोगों का व्यवहार भी उस व्यक्ति के व्यवहार से अछूता नहीं रह सकता।

लोगों की सामाजिक चेतना समरस नहीं होती। हमें अत्यधिक विविध प्रकार की जातिगत प्राकृतिक घटनाएं शामिल होती हैं, जिनमें मानवीय भावनाओं, अनुभवों तथा मुद्दों से लेकर सामाजिक

जीवन के सार-तत्त्व को परिभाषित करने वाले सिद्धान्तों, सामाजिक विकास की दिशा तथा अन्य प्राकृतिक घटनारं शामिल हैं।

“भावनाएं, प्रयत्न, अनुभव, रीति-रिवाज, विचार तथा मनःक्रियाएँ जो लोगों के दैनिक जीवन में पैदा होती हैं और जो लोगों के सामाजिक वर्तित्व को प्रतिबिम्बित करती हैं अपने कुल योग से सामाजिक मनोविज्ञान का गौरव बनाती हैं।”

सामाजिक मनोविज्ञान का विशिष्ट पहलू यह है कि यह लोगों की जीवन दशा को गीधे प्रतिबिम्बित करता है और यह प्रतिबिम्बन स्वतः स्फूर्त और आकस्मिक ढंग का होता है जिसे बाहरी पहलू हो संमित होता है।

समाज में व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक मनोविज्ञान की विषयवस्तु की परिधि के अन्दर आता है। ये ही कारण हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान का गौरव व्यापक है जो कि सामाजिक चेतना का द्विगुणित है।



सामाजिक चेतना के रूप

एसी समाजों में, जो कृषायुगी व्यवस्था के विघटन के बाद इतिहास के दौरान में एक के बाद एक आते रहे हैं, सामाजिक चेतना निम्नलिखित मुख्य रूपों में व्यक्त होती रही है : राजनीतिक विचार-धारा, विधि-चेतना, नैतिकता, धर्म, विज्ञान, गान्धर्वात्मक विचार और कला तथा दर्शन।”

१- २० पृष्ठ शैल्लि- दि फिलॉसफी आफ मार्क्सिस्ट एण्ड लेनिनिस्ट पृ० ३६६

२- केल्वे व कोवालपोन- ऐतिहासिक मार्क्सवाद पृ० २७२

१- राजनीतिक विचारधारा या चेतना

कोई राजनीतिक विचारधारा विचारों की एक व्यवस्था है, जो किसी सामाजिक वर्ग अथवा सामाजिक समूह द्वारा चलाई गयी नीतियों के जोचित्व की गैदान्तिक रूप से पुष्टि करती है।^१ वर्गों, राष्ट्रों तथा पार्टियों के बीच एक विशेष प्रकार के सम्बन्धों का नाम राजनीति है। राजनीति सरकारों के विशेष तत्त्वों तथा स्वरूपों को प्रकट करता है और इसमें वर्गों तथा सामाजिक समूहों की भागीदारी को भी मुखरित करती है।^२ वर्गों के बीच सम्बन्धों तथा राज्य की संरचना एवं राजकीय संस्थाओं और एकाद्यों के गार तत्त्व को निर्धारित करते हुए राजनीतिक चेतना लोगों के जीवन और समाज को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।^३ राजनीतिक विचारधारा सामाजिक चेतना का ऐसा रूप है, जिन्हे द्वारा वर्गों के सम्बन्ध, राज्य से, युक्त समाज के विकास के एक या अन्य स्तर पर सामाजिक - राजनैतिक संगठन से और अन्त में, अन्य समाजों और राज्यों से उनके सम्बन्ध प्रतिबिम्बित होते हैं।^४ राजनैतिक चेतना की परिधि के अन्तर्गत सार्विक वर्गीय उद्देश्य, कार्य भार तथा राजनैतिक कार्यक्रम निरूपित होते हैं, जिन्हें वर्ग अपने संघर्षों द्वारा तथा राजनैतिक संस्थाओं और संगठनों के कार्यक्रमों द्वारा हासिल करना चाहते हैं।

मार्क्स ने लिखा है कि - "लोग अपने

१-V.I. Lenin- Collected works Vol. 32, p 272

२-Ibid , Vol. 35 page 273-74

३-Ibid , Vol. 41 page 381-82

४- केंसे व कोमारापोन- ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० २७३

जीवन के सामाजिक उत्पादन में ऐसी निश्चित सम्बन्धों में प्रवेश करते हैं जो अनिवार्य और उनकी उत्पत्ति से स्वतन्त्र होते हैं। ये उत्पादन सम्बन्ध उनको मॉतिक उत्पादक शक्तियों के विकास को एक निश्चित क्रम का अनुकूल ही होते हैं। इन उत्पादन शक्तियों का योग ही समाज का वार्षिक ढांचा है, वही कम्पली नोब है जिस पर राजनीति और कानून की अधिरचना की जाती है और उनके अनुरूप होते हैं, सामाजिक चेतना के निश्चित रूप।^१

यह ठीक है कि इतिहास के विकासक्रम में धार्मिक, मॉतिक, दार्शनिक, राजनैतिक और कानून सम्बन्धी विचार बदलते जाते हैं, लेकिन धर्म, नैतिकता, दर्शन, राजनीति और कानून तो मरदा एक परिवर्तन से बचे रहे हैं। ऐतिहासिक मॉतिकवाद चेतना के अलग अलग रूपों का अध्ययन भिन्न दृष्टिकोण से करता है। ऐतिहासिक मॉतिकवाद एक दार्शनिक समाजशास्त्रीय विज्ञान के रूप में चेतना के रूपों का अध्ययन एक दृष्टिकोण से करता है कि सामाजिक परिघटनाओं की व्यवस्था में उनका स्थान क्या है, उनकी विशेषताएं और सामाजिक कार्य क्या है, समाज के जीवन और विकास में वे क्या भूमिका बना करते हैं, आदि।^३

सामाजिक चेतना के सभी रूपों में राजनीतिक चेतना वा सोधा सम्बन्ध वार्षिक आधार से है। चूंकि राजनीतिक विचार-धारा वह सैद्धान्तिक स्वरूप है, जो घनिष्ठ रूप से अर्थ व्यवस्था से जुड़ा हुआ है और जो वार्षिक स्थितियों को अत्यधिक केन्द्रित रूप में व्यक्त करता है, इसलिए राजनीतिक विचारधारा ऐसी मजबूती की है जो वार्षिक आधार

१- मैकावर एण्ड पेज- सोसाइटी पृ० ५

२- अल्फ्रेड बेवर - लिट्टी लाफ फिलासफी पृ० ११६

३- कंले व बीवालोन- ऐतिहासिक मॉतिकवाद पृ० २७३

को समूचे विचार धारात्मक ढाँचे में जोड़ती है। राजनीतिक चेतना जनता को एकनिष्ठ करती है ताकि प्राचीन व्यवस्था की जड़ों को समूलेन नाष्ट करके नवीन व्यवस्था का गिलानिया किया जा सके। लेनिन ने लिखा है, 'विनाय के प्रति समुक्ति राजनीतिक रुख ऐसे बिना कोई वर्ग अपना शासन कायम नहीं रख सकता और परिणामतः अपनी उत्पादन सम्पत्तियाँ हल नहीं कर सकता।'

शोषक वर्ग अपनी राजनीतिक चेतना के माध्यम से अपने वर्गिक आधार को अत्यधिक मजबूत बनाने में रत रहता है तथा उसी प्रकार सर्वहारा वर्ग अपनी राजनीतिक चेतना के आधार पर शोषकों से मुक्त समाज की रचना में रत रहता है। जब पुरानी संरचना की कोस के भीतर विकसित उत्पादक शक्तियाँ और पुराने उत्पादन सम्बन्धों में द्वन्द उत्पन्न होता है तो सामाजिक विकास की तात्कालिक आवश्यकताओं के प्रतिबिम्ब के रूप में नये राजनीतिक विचार सामने आते हैं, जिनके द्वारा स्व-राजनीतिक संघर्ष के उद्देश्य निरूपित होते तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के रास्तों और साधनों की ओर ध्यान मिलता है। ये विचार जनता को एकता बद्ध करके एक ऐसी राजनीतिक रचना तैयार कर देते हैं जो पुरानी व्यवस्था को फिटाने की सामर्थ्य रखती है। डा. : 'उन्नत राजनीतिक विचार वर्तमान के विकास में और इसी के अनुकूल सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं के विकास में एक संगठनकारी, एकताकारी तथा परिवर्तनकारी भूमिका अदा करते हैं।'

विधि- चेतना

वर्ग समाज के स्वरूप, सामाजिक चेतना के

१- लेनिन- संकलित रचनाएं, खण्ड ३ पृ० ५७४

२- कैंटले व कोवालज़ोव - ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० २७४

एक स्वरूप के रूप में "कानूनों केना, समाज के सदस्यों के कार्यों, उनके अधिकारों तथा कर्तव्यों के औचित्यपूर्ण तथा औचित्यपूर्ण चरित्र तथा कानूनों के न्याय संगत तथा अन्यायपूर्ण होने के सम्बन्ध में लोगों के विश्वासों का कुल योग है"। "कानूनी विचार अपने स्वभाव से ही वर्ग चेतन होते हैं। प्रत्येक वर्ग के अपने स्वयं के कानूनी विचार तथा उनकी अपनी कानूनी चेतना होती है। उदाहरणार्थ- श्रमिक जनता का शोषण तथा व्यापक बेरोजगारी, पूँजीपति वर्ग के दृष्टिकोण से उक्ति है परन्तु स्वहारा के दृष्टिकोण से अपराध है। दूसरी ओर, श्रमिक जनता के हितों के लिए संघर्ष, शोषण का अन्त करने, नयी समाजवादी समाज व्यवस्था स्थापित करने के लिए संघर्ष स्वहारा के दृष्टिकोण से न्यायोक्ति है, लेकिन पूँजीपति वर्ग इसे अपराध मानता है।

समाज में शासक वर्ग के कानूनी विचारों का ही प्रभुत्व होता है। यह विचार स्वार्थपूर्ण होते हैं तथा शासक वर्ग के मन-फान्द होते हैं। "शासक वर्गों की विधि केना केवल वर्तमान विधि-व्यवस्था में मूर्त रूप में प्रकट ही नहीं होती, बल्कि उसका औचित्य भी प्रस्तुत करती उसको ऐदान्तिक पुष्टि करती और उसे एक मात्र उक्ति विधि व्यवस्था के रूप में पूरे समाज पर थोपने का प्रयास करती है"।

समाजवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग की विधि केना और विवक्षित होती और सम्पूर्ण समाज की विधि-केना बन जाती है। "समाजवादी विधि केना समाजवादी विधि व्यवस्था में एकार होती

१- ए०पी० शैफूत्ति - दि फिलासफी आफ मार्किस्ट एण्ड लेनिनस्ट

पृ० ३७४

२- कंस्ले व कोवालजोन- ऐतिहासिक मार्क्सवाद पृ० २७६

हैं और नागरिकों को समाजवादी वैधिका की भावना के अनुसार शिक्षित करने का एक साधन हैं। समाजवाद के अन्तर्गत कानूनों का पालन राज्य की दमनकारी शक्ति पर उतना निर्भर नहीं करता, जितना पूरे जनगण की समाजवादी विधि केना पर जो समाजवादी राज्य के कानूनों की शक्ति अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति मानते हैं।^१ किसी वर्ग समाज में प्रत्येक वर्ग के अपने कानून सम्बन्धी विचार होते हैं फिर भी समाज का कानून सभी वर्गों तथा समाज के सदस्यों के लिए एक तथा मान्य होता है। लेनिन ने लिखा है, “कानून उस यन्त्र के बिना कुछ नहीं है जिसमें कानून पालन को लागू करवाने की शक्ति हो।”^२ इसी यह बात प्रकट होती है कि राज्य तथा कानून एक दूसरे के अभि-
 भाज्य रूप से जुड़े हुए हैं तथा उनका उदय एक साथ ही हुआ है और हमेशा एक साथ ही उनका अस्तित्व भी है। इस आधार पर ए० पी० शैफुलिन ने कानून की परिभाषा देते हुए लिखा है, “कानून समाज में जनता के व्यवहार का कुल योग है, जो शासक वर्ग को इच्छा की अभिव्यक्ति करता है तथा जिस राज्य द्वारा उन सामाजिक सम्बन्धों तथा सार्वजनिक नियम व्यवस्था को सुरक्षित बनाये रखने, उसे विकसित करने के लिए बनाया जाता है, ताकि शासक वर्ग के हितों और लाभों को सुनिश्चित किया जा सके।”^३

समाजवादी विचारधारा से प्रभावित होकर अपने चारों ओर के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करते हुए सर्वहारा तथा गैर सर्वहारा शक्ति जनता अपनी कानूनी चेतना स्वयं निरूपित करती है जो पूर्वापत्ति

१- कैंसले व कौवाल जॉन- ऐतिहासिक मार्क्सवाद पृ० २७७

२- वी० आर्दे० लेनिन- कलेक्टड वर्क्स , वाशिंगटन २५ पृ० ४७१

३- ए०पी० शैफुलिन- दि फिल्लोसफी ऑफ मार्क्सिस्ट एण्ड लेनिनिस्ट ,

वर्ग में मुक्तः भिन्न होती है। चूंकि पूंजीवादी कानून व्यवस्था तो सामक
वर्ग की सुरक्षा के होती है। कतः समाजवादी क्रान्ति के दौरान इस कानून
व्यवस्था को खत्म कर दिया जाता है। लेनिन ने लिखा है, "पूँजीपति
वर्ग द्वारा निर्मित कानून की उपयोगिता का दौर समाप्त हो रहा है तथा
उम्मे स्थान पर व्यापक क्रान्तिकारी संघर्ष का दौर शुरू हो रहा है और
परिणामस्वरूप यह संघर्ष सभी पूँजीवादी वैधताओं को समूची पूँजीवादी व्यव-
स्था को खत्म कर देगा।"

समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप जिस सर्व-
द्वारा राज्य का उदय होता है वह खत्म पूँजीवादी कानून व्यवस्था के स्थान
पर अपना स्वयं का समाजवादी कानून तन्त्र तथा समाजवादी कानून स्था-
पित करता है जो श्रमिक जनता को कानूनी क्षेत्रों के अन्तर्गत होता है। "समा-
जवादी विधि क्षेत्रों के कार्यों का मूल्यवान् समाजवादी वैधता की
रीशनों में करती है।" इसीलिए, सभी नागरिकों को समाजवादी विधि
क्षेत्रों की भावना के अन्तर्गत प्रशिक्षित करना, समाजवादी समाज को मजबूत
और विकसित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। कैस्ले व कोवालजोन ने
विधि क्षेत्रों को परिभाषित करते हुए ठीक ही लिखा है, "विधि क्षेत्रों
विचारों की ऐसी गैहति है, जिसकी जड़ें इतिहास में हैं, जिसका उदय वर्गों
की उत्पत्ति के संग होता है और जो बदलती हुई समाजिक - वार्षिक व्यवस्था
के साथ बदल जाती है। इसमें समाज द्वारा आम तौर पर स्वीकृत नै धारणाएँ
मिथ्या और उल्लेख शामिल हैं कि मानवों, राज्यों तथा राष्ट्रों के परस्पर

१- वी० जार्ज० लेनिन- क्लेवेटेड वर्क , वाल्यूम १६ पृ० ३१६

२- कैस्ले व कोवालजोन - ऐतिहासिक भौतिकवाद पृ० २७६

सामान्य में क्या जानूँगी और क्या गैर जानूँगी है, क्या न्यायपूर्ण है और क्या अन्यायपूर्ण है और आवश्यक है।^१

३- नैतिकता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज तथा मानव समूह के बाहर नहीं रह सकता। इस नाते समाज अपने सदस्यों के व्यवहार पर कुछ प्रतिक्रियाओं को लागू करता है जिसे मनुष्य के कार्य समाज के हित में हों। समाज इन कार्यों के अच्छे या बुरे होने के बारे में अपने निर्णय देने के अधिकार को सुरक्षित रखता है। “मनुष्यों के कार्यों के मूल्यांकन के बारे में, कि वे, अच्छे अथवा बुरे हैं, उचित अथवा अशुचित हैं, ईमानदारी के हैं अथवा बेईमानी के हैं, समाज में प्रचलित विचारों की नैतिक विचार करती है।”

माकनावादियों का मत है कि नैतिकता की उत्पत्ति केतना है, एक जातिगत शक्ति है एवं है। ज्ञानो दार्शनिक प्लेटो ने नैतिकता को “अच्छे के विचार” के सम्बन्धित किया, जो मानव-केतना है पर है, लेकिन कान्ट ने नैतिकता की वास्तविकता के सम्बन्धित बताया। “नैतिकता केवल मानव जाति में नहीं होती, यह पशुओं में भी होती है तथा केवल सामाजिक स्वभाव की अभिव्यक्ति करती है।”

कुछ समाजशास्त्रियों ने नैतिकता की उत्पत्ति

१- केल्ले व कोवालज़ोन- ऐतिहासिक नैतिकताद पृ० २७५

२- ए०पी० लेफ्लिन- दि फिलॉसफी ऑफ मार्क्सिस्ट एण्ड लेनिनिस्ट पृ० ३५

३- कार्ल कांट- Die Materialistische Geschichtsauffassung-

Erster Band, 1929, Brl. p 440

को मनुष्य की तथाकथित उन्नत और अपरिवर्तनीय प्रकृति के गुणों से सम्बद्ध किया। नैतिकता तथा लोगों की उत्पादन क्रिया के बीच सम्बन्धों पर बल देते हुए एरिस्म ने लिखा है, "चेतन जगत्ता ज्ञेय रूप में मनुष्य अपने नैतिक विचारों को, अन्तर्लोकत्वा उन व्यावहारिक सम्बन्धों से प्राप्त करते हैं जिन पर उनकी वर्गीय स्थिति निर्भर करती है, उन वार्थिक सम्बन्धों से प्राप्त करते हैं जिनसे अन्तर्गत वे उत्पादन तथा विनिमय क्रिया उल्लाते हैं।" मनुष्य समाज में रहकर अन्य व्यक्तियों से व्यवहार करता है। इसी व्यवहार में नैतिक मानदण्ड या नैतिकता जन्म लेती है। यह आवश्यक नहीं कि सभी कार्य सभी व्यक्तियों के दृष्टिकोण में नैतिक हों। कुछ की में अनैतिक हो सकते हैं तथा कुछ की में न नैतिक न अनैतिक। जे० एस० मिल ने ठीक ही कहा है, "विभिन्न कर्त्ताओं की परिस्थितियाँ परस्पर बहुत भिन्न होती हैं और दूसरा यह कि एक ही परिस्थितियों में भी एक मनुष्य एक तरह महसूस नहीं करते और न एक प्रकार की प्रतिक्रिया ही करते हैं।" वेस्टर मार्क ने भी इसी तरह की बात कही है। "नैतिक जीवन का कोई वर्तुगत पैमाना नहीं है जिसे सभी मनुष्य एक स्तर में स्वीकार कर सकें।"

माध्व्यादी विचारधारा के अनुसार वर्ग विभा-
जित समाज में शोणकों एवं शोणितों में पृथक्-पृथक् नैतिकता होती है। ऐति-
हासिक विकास की दृष्टि से देखने पर कहा जा सकता है कि दास समाज में
दास स्वामियों को नैतिकता का बोलवाला था। सामन्ती समाज में सामन्ती

१- Karl Kautsky-Die Materialistische Geschichtsauffassung,
Erster Band, 1929, Berl. p 440

2. J.S. Mill - An introduction to logic and Scientific
Method, p. 347

के

३- एम्मा० जार्ज गुरविच और विल्बर्ट मूर - ट्रैन्सिण्डेन्स एन्चूरी सोसियोलोजी,

प्रभुओं की नैतिकता का जीलवाला था तथा पूँजीवाद में पूँजीपतियों की नैतिकता का जोर शोर रहा। इसके विपरीत दासों, कृषकों, श्रमिकों के नैतिक मानदण्ड होते हैं। इस प्रकार जलग जलग वर्गों की नैतिकता, नैतिक मानदण्ड अथवा आचार संज्ञिता भी जलग जलग होती है। फिर भी कुछ ऐसे नैतिक मूल्य हैं जो सभी वर्गों में समान होते हैं, क्योंकि नैतिक श्रेष्ठता में अपूर्व आकर्षण होता है।^१

ऐतिहासिक मौलिकवाद की मान्यता के अनुसार नैतिकता सामाजिक केतना का एक विशेष रूप है जो मानवों के परस्पर सम्बन्धों को अच्छे और बुरे, न्याय और अन्याय, ईमानदारी और वैधमानी आदि के प्रवर्गों में प्रतिबिम्बित करता है तथा मनुष्य के, उनके राजमर् के जीवन में, समाज या वर्ग के तत्वाजों की नैतिक वादशी, आचरण के उल्लों और नियमों के रूप में निर्धारित करता है^२। ये वस्तुनिष्ठ तत्वाज नैतिक केतना में अन्य लोगों के प्रति, परिवार के प्रति, स्वयं अपने तथा अन्य वर्गों के प्रति, मातृभूमि, राज्य, उत्थादि के प्रति नैतिक उत्तरदायित्वों के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। नैतिक केतना तथा व्यक्ति के विश्वाणों के अनुसार काम करने की आन्तरिक प्रेरणा के रूप में काःकरण की उत्पत्ति होती है। परिणामस्वरूप, समाज की नैतिक केतना एक व्यक्ति के कार्यों के सामाजिक मूल्यांकन, यानी उनके सामाजिक महत्त्व के मूल्यांकन, यन्त्रके के रूप में व्यक्त होती है।^३

सर्वहारा की नैतिकता के सिद्धान्त पूँजीपति वर्ग के सिद्धान्तों के एकदम विपरीत होते हैं। श्रान्तिकारी मजदूरों का चरित्र

१- फ्लूटार्क- लारव्य पृ० ६४

२- कैल्ले व कौवाल्सोन - ऐतिहासिक मौलिकवाद पृ० २००

३- वही , पृ० २००

प्रस्तुत करते हुए मार्क्स ने लिखा है, " उनके लिए भाई चारा सीसला वाक्य नहीं, एतद्वय है और यम में उनके हरे चेहरों द्वारा हम मानवता के सम्पूर्ण सन्धिक का दर्शन पाते हैं । "

स्वहारा नैतिकता एक वर्ग की नैतिकता होने के साथ ही सम्पूर्ण प्रमिक्त जनता की नैतिकता होती है । ऐसा इसलिए है कि शोणकों के विरुद्ध संघर्ष में स्वहारा न केवल अपने हितों की रक्षा करता है बल्कि पूरे राष्ट्रों के हितों को रक्षा करता है । स्वहारा नैतिकता की व्याख्या करते हुए लेनिन ने लिखा है , " जिन्हे द्वारा पुराने शोणक समाज की धराशायी करने में मदद मिलती है तथा जिन्हे सम्स्त प्रमिक्त जनता को स्वहारा के विरुद्ध लड़ा कर देने में सहायता मिलती है जो एक नये समाज की गर्चना कर रहा है । "

कम्युनिस्ट नेता ब्रम्नेव ने गोविक्रत संघ की कम्युनिष्ट पार्टी की २५ वीं कांग्रेस में घोषित करते हुए कहा - " जैसे-जैसे हमारा समाज विकास की उच्चतर मंचिलों में जायेगा, समाजवादी नैतिकता के नियमों की बाज ही रही कुछ अवहेलनाओं को और अधिक अपहनीय माना जायेगा । "

नैतिक मानदण्डों के प्रतिरिक्त निश्चय ही ऐसे हुए कानूनी नियम भी हैं जो समाज में चालू हैं जो नैतिक मानदण्डों तथा

१- K. Marx and F. Engles - Selected works Vol. 3 p. 661

2. V.I. Lenin , Collected works , Vol. 31 page 293

3. L.I. Ereshnev , Report of the C.P.S.U. Central Committee and the Immediate tasks of the Party in Home and foreign Policy 30th Congress of the CPSU p. 94

नियमों की ही तरह मानव व्यवहार को नियमित करते हैं। नैतिक मानदण्ड कानूनी मानदण्डों से बहुत भिन्न होते हैं। यदि समाज का कोई पदार्थ किसी कानूनी नियम का पालन करने से इनकार करता है तो गलत के क्षेत्र उन्हें पालन करने पर बाध्य कर देंगे। “ कानूनी नियम कानूनों में कलम बन्द होते हैं पर नैतिक नियम कलमबन्द नहीं होते। उनका पोषण जनमत रीति-रिवाजों, धर्मों और शिक्षा के द्वारा होता है। मानव के विश्वास भी शक्ति से होता है। वे ही समाज के गण्य अन्य जातियों से गण्य परिवार तथा अन्य लोगों से गण्य किसी मनुष्य के सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं।” समाज नैतिकता को अन्य देता और उसकी रक्षा करता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जो नैतिकता समाज से अधिकतम प्रगतिशील विकास के स्वरूप होती है तथा मनुष्य को सुरक्षा को ध्यान में रखे हुए समाज के प्रगतिशील विकास को अधिकव्यक्ति करती है, वही अच्छी नैतिकता है।



धर्म

“ धर्म लोगों की चेतना में उन वाह्य शक्तियों का, जो उनके दैनिक जीवन में उन पर प्रभुत्व रखती हैं, एकत्र काव्यनिक तथा प्राकृतिक प्रतिबिम्बन करता है। यह ऐसा प्रतिबिम्बन है जिसमें तांत्रिक शक्तियाँ अलौकिक शक्तियों का रूप धारण कर लेती हैं। धर्म देवों-देवताओं के मिश्रण

विश्वाओं तथा रूढ़िगत रस्मों, पूजा, बचना से जुड़ा हुआ है।^१ **

धर्म की उत्पत्ति मानव-समाज की संरचना की उन प्रारम्भिक व्यवस्थाओं में हुई है जब उत्पादक शक्तियों के निम्नतर विकास की अवस्था के कारण मनुष्य प्रकृति की स्व-सृजित शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने में अपने को दुर्बल समझता था। अज्ञानवश इन शक्तियों को मनुष्य ने अलौकिक माना तथा यह विश्वास हो गया कि देवो-देवता ही इन प्राकृतिक शक्तियों को नियन्त्रित करते हैं।

समाज के वर्गों में विभक्त हो जाने के बाद

जब समाज के कुछ हिस्सों ने दूसरों का शोषण करना प्रारम्भ किया तब मनुष्य तथाकथित अलौकिक शक्तियों के बन्धन में फँस गया जिसके अन्तर्गत धर्मियों को 'अत्यधिक मयावह दुःख' भेजने पड़े, उनको मार्करतम पशुत्व यातनारं गहन करनी पड़ी, यह यातनारं उस दुःख से हजार गुना पीड़ा जनक था जो मनुष्य को प्रकृति की अपाधारण घटनाओं द्वारा भेजनी पड़ती थी।^२ **

मेलिनाउस्की का कथन है कि ** धर्म क्रिया का एक ढंग है साथ ही विश्वाओं की एक व्यवस्था है जो समाजशास्त्रीय घटना के साथ साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है।^३ **

धर्म के पीछे बन्ध विश्वास है, पादू टीका है। का: धर्म का विज्ञान से संघर्ष होता है। विज्ञान धर्म की तरह विश्वास

१- ए०पी० शैफ़ेलि- दि फिलोसफी ऑफ मार्किस्ट एण्ड लेनिनिस्ट पृ० ३६६

२- V.I. Lenin- Collected works , Vol. 5 p 405

३- मेलिनाउस्की- मैजिक साइंस एण्ड रिलीजियन पृ० २४

पर नहीं चलता बल्कि विज्ञान तो यथार्थ की ठोस धूमि पर चलता है । " जादू, धर्म और विज्ञान तीनों विचार-आत्मक गिद्दान्त हैं । उनमें आधुनिक विज्ञान ने शेष दो को हटाकर स्थान ग्रहण कर लिया है । " १

धर्म तथा विज्ञान के संघर्ष के विषय में बर्टिण्ड रसेल का कथन पर्याप्त एमोशन इष्टिगीकर होता है । उनका कथन है कि " प्रत्येक ऐतिहासिक धर्म के प्रमुक्तः तीन पक्ष होते हैं , चाहे वह पुरोहित मंडल, कतिपय अनुष्ठान और व्यक्तिगत नैतिकता के नियम । इन तीनों ही रूपों में धर्म का विज्ञान से संघर्ष होता है । " २

ऐतिहासिक मार्क्सवाद की मान्यतानुसार धर्म की उत्पत्ति एक सामाजिक व्यवस्था की इस आवश्यकता के कारण होती है कि मानव कार्यकलाप के नियन्त्रण के लिए पवित्र रूप ढूँढ निकाले जायें ।

द्वन्द्वात्मक मार्क्सवाद धर्म से विरुद्ध संघर्ष को वैज्ञानिक स्तर पर संगठित करता है तथा धर्म के उन्मूलन के लिए पूँजीवाद को मिटाने पर बल देता है ।

मार्क्सवादी- लेनिनवादी पार्टियों की मांग है कि धर्म को राज्य से अलग किया जाये । वे धर्म के आधार पर मनुष्यों को अलग अलग श्रेणियों में बांटने का विरोध करती हैं ।

ठोक इसके विपरीत दूसरी स्थिति यह है कि

१- सर जेम्स फ्रेजर- दि गोडेल वाउ - पृ० ७१२

२- बर्टिण्ड रसेल- रिलीजन एण्ड साइन्स पृ० ८

३- फ्रेडरेक व कोवाल्सोन - ऐतिहासिक मार्क्सवाद पृ० २६१

सामाजिक चेतना के एक विशिष्ट रूप में धर्म- कर्म और धर्म विरोधी दोनों ही प्रकार के विचार धर्म के अन्तर्गत आते हैं ।

ठोस सामाजिक-धार्मिक ज्ञानवीन ने कहा चलता है कि " लोगों में धार्मिक रुत धार्मिक परम्पराओं और धार्मिक आजावरण (सम्प्रदाय, धार्मिक समूह, धार्मिक परिवार) द्वारा बना रहता है जिनमें लोग आगे परम्परा को पुष्टि के कारण या अपने भाव की निर्वलता के कारण तगल्ली के लिए धर्म का सहारा लेते हैं । "

समाज का एक वर्ग धर्म में विश्वास रहता है तथा दूसरा वर्ग धर्म में आस्थावान नहीं होता । अतः यह स्थिति धिमान की प्रगति पर टिकी होती है । धिमान के विद्यमान वर्ण धर्म कर्म की नींव को रने: रने: उसा, रहे हैं ।

कला

कला, जो सामाजिक चेतना का महत्त्वपूर्ण रूप है, समाज के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास में भारी भूमिका अदा करती है । सुर सम्कालीन पूंजीवादी गान्धिर्यशास्त्री यह मत व्यक्त करते हैं कि कला मनुष्यों के आत्म विकास का साधन है तथा कलाकृतियों को रचना किमी निश्चित सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए न होकर आत्मोन्नति की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाने के लिए होती है । एक सामाजिक प्राकृतिक घटना के रूप में कला का उदय तथा विकास लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ ,

जिसे उन्हें गान्दर्वी बोध के माध्यम से जानन्द प्राप्त हो गये। इसी स्पष्ट हो जाता है कि कलाकार अपने रचना अपने लिए तथा अपने स्वयं के विकास के लिए नहीं बल्कि दूसरे लोगों के लिए करते हैं। "कलाकृतियों की रचना के मात्तम विकास का तत्त्व निर्णायक नहीं होता, क्योंकि जात्म-विकास वैज्ञानिक अनुसन्धान के दौरान, व्यापक कार्य द्वारा तथा अन्य अनेक सामाजिक कार्यकलापों द्वारा होता है।"

वस्तुतः कला सामाजिक जीवन के एक विशेष क्षेत्र की चीज है, उस क्षेत्र की, जिसका काम यथार्थ को गान्दर्वी-तत्त्व तथा व्यावहारिक रूप में जात्मगत करना है।" परन्तु यह ऐसा क्षेत्र नहीं है जो दूसरों से अलग हो। मनुष्य केवल विज्ञान के नियमों के अनुसार ही सृष्टि नहीं करता बल्कि "गान्दर्वी के नियमों" के अनुसार भी करता है।

"सामाजिक चेतना के एक रूप तथा मानव कार्यकलाप के एक विशेष प्रकार की हस्तियत है कला का उद्देश्य यथार्थ के साथ मनुष्य के गान्दर्वी-तत्त्व सम्बन्धों की प्रतिबिम्बित करना और समाज के गान्दर्वी-तत्त्व व्यवहारों को दर्ज तथा विकसित करना है।"

कला यथार्थ को केवल प्रतिबिम्बित ही नहीं करती, बल्कि उसका मूल्यांकन भी करती है और उसके प्रति एक निश्चित रुख भी प्रकट करती है। लेनिन तो कला को जनगण की वस्तु मानते हैं। उनका कथन है, "कला जनगण की चीज है, इसकी जड़ ठीक आम श्रमजीवी

१- ए०पी० शैखूलि- दि फिलसोफी आफ मार्किस्ट एण्ड लेनिनिस्ट

पृ० ३८६

२- कैंसे व कोवाल्सोन- ऐतिहासिक मार्क्सवाद पृ० २६३

३- वही, पृ० २६४

जनता के बीच में गररो जमी होनी चाहिए । लै हए जनता के लिर बोध-
गम्य वीर उनमें जनप्रिय होता है । छै हए जनता की अनुभूतियों, विचारों
वीर आकांक्षाओं की व्यक्ताबद्ध करना वीर उनका स्तर ऊँचा करना चाहिए ।
उन लोगों में जो कलाकार की जात्मा है, ई उनकी जगाना वीर विकसित
करना है ।^१ ”

वास्तव में कला विचारात्मक, नैतिक तथा
मानवव्यात्मक शिक्षा का एक माध्यम है । “ कला मनुष्य के चारों ओर की
दुनिया की प्रतिबिम्बित करती है । ऐसा करके वह हमें हए दुनिया का बोध
प्राप्त करने में सहायता देती है वीर राजनैतिक, नैतिक एवं कलात्मक शिक्षा
के सक्षिप्ताली यन्त्र का काम करती है । ”

संक्षेप में, कला जब समझ-झूझकर जनगण
वीर प्रगति की सेवा करे तो वह सामाजिक परिवर्तन में उत्तम महत्त्वपूर्ण
हो जाता है । कला कृतियों द्वारा लोगों का चित्रण, उनके जीवन के तीर
तरीकों की प्रदर्शित करके तथा उनके चरित्र व उनके व्यात्मक पक्ष की उजागर
करके होता है । कलाकार अपने पात्रों द्वारा लोगों को हए बात में शिक्षित
करता है कि कुछ निश्चित सामाजिक घटनाओं की किस रूप में उनको लेना
चाहिए तथा किन उद्देश्यों की हृदयकाम करना चाहिए ।

दर्शनशास्त्र

दर्शनशास्त्र का चेतना के रूपों में अपना एक

१- कैस्ले व दीवालयोन- ऐतिहासिक भूतलिकवाद पृ० २६६
२- वि० अफनारखेव- मार्क्सवादी दर्शन पृ० ३५७

विभिन्न तथा विविध स्थान हैं। परन्तु जगत्प्रधारण इसके स्वरूप में बहुत कम परिचित है। अतः देखने में ऐसा परिलक्षित होता है कि इतिहास के मार्ग पर इसका प्रभाव शून्य है अधिक नहीं पड़ा। दूसरी ओर जबकि मनुष्य अपने कार्यक्षेत्र में सामाजिक चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियों में निर्दिष्ट होते हैं, अतः स्पष्ट है कि दर्शनशास्त्र इतिहास के मार्ग पर उत्पन्न महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। दर्शनशास्त्र चेतना की वह अभिव्यक्ति है जिसे चन्द विशेषणों को छोड़कर और किसी को कुछ लेना देना नहीं है, फलतः तार्किक में यह विचारों की एक ऐसी पद्धति है, जो व्यापक सामाजिक महत्त्व और दित्वरूपी की चीज है।^१

दर्शनशास्त्र का कार्य व्यापक है। इसके अध्ययन से वे सभी विरोध तथा विस्मयिता दूर होती हैं, जो विभिन्न विचारों, कलाओं तथा अन्त्यात्म जगत् की दृष्टियों, पद्धतियों और मान्यताओं बादि के बीच उठ खड़ी होती हैं। दर्शन मार्गकृतिक अभिव्यक्ति का विशेषण, व्याख्या का मूलान्वित करने का प्रयत्न है।^२ वस्तुतः एक मात्र दर्शन शास्त्र ही किसी भी स्थान सिद्धान्त का मौलिक खाल उठाता और उसका समाधान करता है, यह खाल कि विश्व की रक्ता कहां है जाती है, विश्व में प्राथमिक, मुख्य और मौलिक क्या है, यानी इसकी विविधता का वाप छोड़ क्या है? अतः मात्र दर्शनशास्त्र ही विश्व धारणा प्रदान करने में सक्षम है।

ऐशान्तिकाल में दर्शन की उपयोगिता दिगुणित हो जाती है। बौद्धा स्त्री भी ऐशान्तिक का गुण है। दो विश्व युद्ध हो

१- केंद्री व कौवात्तोन- ऐतिहासिक मौलिकवाद पृ० ३००

२- डाब्देवराज - संस्कृति का दार्शनिक विवेक पृ० २५५

हुँ है । दुनिया के लगभग सम्स्त राष्ट्रों में कुछ सामग्री बिछी पड़ी है तथा दुनिया एक बार पुनः उस घाव के ढेर से सम्मान हो गयी है जो माक्स को तोली को प्रतीक्षा में है । यदि ढेर के किसी भी कोने से माक्स के उत्पन्न अग्नि को पकड़ लिया तो निश्चित रूपेण ढेर पंक्तत्त्वों में फिल जायेगा ।

जब : इस प्रकार की दार्शनिक चिन्तारं मंगार के अन्त होने को वरुण घोषणात कर रही है । फलतः बाध का मानव निराशा के गर्त का और अग्रसर हो रहा है । यदि यही दार्शनिक चिन्ता मानव को मताती रही तो वह दिन दूर नहीं कि मानव निष्काम तथा अकर्मण्य हो जायेगा । ऐसी स्थिति में दर्शन की मानववादी तथा समाजवादी दर्शन का अक्षरप ग्रहण कर घोर निराशा के युक्त वातावरण को तथा दिक्कतव्यविमूढ़ मानव को एक नया तथा मृज्जात्मक मार्ग प्रशस्त करना है । विज्ञान की विध्वंस-कारी -क्तियों की शान्ति- कार्य में मानवता के रक्षार्थ प्रयोग में लाने का काम प्रस्तुत करना है ।

काव्य में सामाजिक चेतना का वैशिष्ट्य - सामाजिक चेतना से अनुप्राणित साहित्य की निम्नलिखित प्रमुख प्रवृत्तियाँ होती हैं -

1. जीवन और जगत का यथार्थ चित्रण - सामाजिक चेतना से सम्बन्धित काव्य की मूल प्रवृत्ति यथार्थवादी है। अतः साहित्यकार, जिससे काव्य का स्वर सामाजिक चेतना से स्वरित होता है, अपने चारों ओर के जीवन और परिवेश का चित्रण यथार्थ के धरातल पर करता है।
2. वर्तमान का चित्रण - ऐसा साहित्यकार या कवि जिसका काव्य सामाजिक चेतना से ओतप्रोत है, वर्तमान का चित्रण ही अपने काव्य में करता है। अतीत के राग अलापने से उसका सम्बन्ध नहीं होता है। 'सामाजिक चेतना से मनुष्य की आवश्यक ज्ञान, संस्कृति, विचारधारा आदि प्राप्त होती है।'।
3. समाज के प्रति दायित्व का आवश्यक ज्ञान - सामाजिक चेतना से युक्त काव्य का स्वर समाज के प्रति दायित्व के बोध की अभिव्यक्ति करता है। साहित्यकार समाज का चित्रण करता है। समाज में व्याप्त दुराचर्यों, मनुष्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध, मजदूर और किसान की स्थिति तथा सामाजिक सांस्कृतिक भाव, परम्परा, मूल्यों आदि का चित्रण समाज के प्रति साहित्यकार के दायित्व के बोध की प्रकर पहिचान हैं।
4. समाज और उसके सामान्य स्तर से भी संयुक्त होने का भाव - सामाजिक चेतना से युक्त साहित्य की प्रमुख विशेषता समाज तथा सामाजिक सामान्य स्तर से सम्बन्ध रखने की भावना की अभिव्यक्ति है। कवि या साहित्यकार मजदूर तथा किसान की यथार्थ स्थिति पर लेखनी चलाकर इस प्रवृत्ति को अपने साहित्य में साकार करता है।

5. **व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों की व्याख्या** - व्यक्ति एवं सामाजिक प्राणी है। समाजोत्सार्थित जीवन मूल्य मनुष्य को ग्राह्य होते हैं। मानव आचरण तथा उसकी जीवन चेतना साहित्य का दायित्व है। परीक्षा द्वारा प्रदत्त भाव परम्परा से हटकर तुल्य प्रक्रिया के अंगभूत मूल्यों का अस्तित्व वला में नहीं हो सकता है। अतः कवि अपने काव्य में व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों की व्याख्या करके सामाजिक चेतना से धनी होने का दावा प्रस्तुत करता है।

6. **जन कल्याण की भावना** - सामाजिक चेतना से युक्त काव्य की प्रमुख वृत्ति जन कल्याण की भावना होती है। कवि या साहित्यकार अपने काव्य में जन कल्याण की भावना की कामना करता है। "मनुष्य को सामाजिक चेतना उसे गुलामी का अभिषेक नहीं मुक्ति का वरदान होती है।"

7. **धर्म और उसके बाह्य आडम्बरों का विरोध** - सामाजिक चेतना का स्वर जिस काव्य में स्वरित होता है उसमें धर्म के प्रति अंधी आस्था, धार्मिक संकीर्णताएं तथा बाह्य आडम्बरों का कुलकर विरोध दृष्टिगोचर होता है। ऐसे काव्य में तो जीवन, संसार तथा समाज का चित्रण यथार्थ की निष्ठा पर होता है।

8. **अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध तीव्र स्वर** - सामाजिक चेतना से अनुप्राणित साहित्य की मुख्य विशेषता अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध तीव्र स्वर है। साहित्यकार अपने काव्य के माध्यम से अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध मनोहरता है तथा मनुष्य की श्रेष्ठता में विश्वास व्यक्त करता है।

9. **जनसाधारण की भाषा में साहित्य तुल्य** - सामाजिक चेतना से युक्त साहित्य

की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है जन साधारण की भाषा में साहित्य का
 सृजन करना। कवि या साहित्यकार अपने राज्य की भाषा जन सामान्य
 की अपनाता है जिससे सामान्य पाठक भी उसके साहित्य में संगृहीत
 सामग्री का मनन कर सकें।

द्वितीय अध्याय

केदारनाथ सिंह : व्यक्तित्व

द्वितीय अध्याय

कैदरनाथ सिंह का व्यक्तित्व

नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर कैदरनाथ सिंह का जन्म नवम्बर सन् १९३४ में गामान्य कृष्णक परिवार में चम्पिया, जिला- बलिया (उत्तर प्रदेश) में हुआ था । इनका बचपन सहज गुल और गुविधाबों में बीता । प्राथमिक शिक्षा अपने ग्राम में प्राप्ता कर श्री सिंह उच्च शिक्षा हेतु पिथा नगरी काशी पहुँच गये , जहाँ उन्होंने हाई स्कूल में सन् १९५० तक की शिक्षा उदय प्रताप कालिज तथा हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में प्राप्ता की । श्री सिंह ने सन् १९६४ में ' बाधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान ' जैसे नए विषय पर पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्ता की ।

डा० कैदरनाथ सिंह ने शिक्षा में स्वामाविक रूप में लगाव होने के कारण अध्यापन जैसे फुल्ले व्यवसाय की प्रथम परीक्षा प्रदान की । बापके कार्य क्षेत्र का प्रसार ठेठ ग्रामांचल में महानगर तक रहा । डा० सिंह जिन्हें शिक्षा- संस्थाओं में सम्बद्ध रहे उनमें उदय प्रताप कालिज , वाराणसी, सैण्ट एण्ड्रुज कालिज, गौरसपुर , उदित नारायण कालिज, फर्रुखा तथा गौरसपुर विश्वविद्यालय, गौरसपुर हैं । सन् १९७६ में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में बाधुनिक भारतीय भाषाएँ विभाग में डा० सिंह प्रोफेसर पद पर बसीन हैं ।

डा० सिंह के व्यक्तित्व पर उनके पिता का प्रभाव पड़ा है। जिस समय भी केदारनाथ सिंह किशोर थे, उस समय उनके पिता सक्रिय रूप से राजनैतिक कार्य-कलापों में अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। उनके पिता की प्रारम्भ से ही संगीत में रुचि थी तथा राजनीति में सम्बद्ध होने के कारण समाचार पत्र पढ़ने का बड़ा शौक था। संगीत के प्रति जागरूक केदारनाथ सिंह की प्रारम्भ से ही हो गयी थी। उनके ही शब्दों में, “ मैं उनकी राजनैतिक सक्रियता तो नहीं ग्रहण कर सका, पर उनके संगीत प्रेम से भीतर-ही-भीतर प्रभावित होता रहा। ”

केदारनाथ सिंह की कविता लिखने की रुचि प्रारम्भ से ही थी। नेताजी सुभाष चन्द्र के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर श्री सिंह ने अपनी लेखनी से “ सुभाष की मृत्यु ” शीर्षक पर सर्वप्रथम कविता लिखी। उनके ही शब्दों में, “ जीवन में मैं जो पहली कविता लिखी उसका विषय था सुभाष की मृत्यु । ”^१ इस वार्षिक प्रयाण की शुरुकर श्री सिंह ने व्यंग्यरिक्त रूप से लिखना प्रारम्भ किया सन् १९५० से। सन् १९५४ में पाल सुखर की प्रसिद्ध कविता “ स्वतन्त्रता ” का अनुवाद किया जिसके माध्यम से नयी सौन्दर्य-दृष्टि और समकालीन काव्य चेतना से पहला परिचय हुआ। दूर समय तक बनारस से निकलने वाली वनियत कालिक पत्रिका “ हमारी पीढ़ी ” से सम्बद्ध रहे। इनका पहला कविता संग्रह सन् १९६० में प्रकाशित हुआ तथा सन् १९६० में ही प्रयोगशैली कविता के जनक “ बोध ” ने इनकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित हो अपने “ तीसरा सप्ताह ” में नये कवियों की शृंखला में इनकी कविताएँ प्रकाशित कर सम्मान दिया। सन् १९८० में इनकी प्रसिद्ध कृति “ जमे

१- केदार नाथ सिंह- परिचय (तीसरा सप्ताह) पृ० ११३

२- वही , पृ० ११३

फर रही है " पर कैरल के " कुमारन वाशान " कविता पुरस्कार की घोषणा ने नये व्यक्तित्व में चार चाँद लाये ।

कविवर केदारनाथ गिह की रुचियों का क्षेत्र सीमित है । श्री गिह को कविता लिखने तथा गीतों में विशेष रुचि है । श्री गिह के काव्य का कुतूहल करो समय स्पष्ट होता है कि उन्हें अकेलापन बहुत पसन्द है, जिसकी छाप उनके काव्य पर है । केदार नाथ गिह के शब्दों में , " कविता , गीत और अकेलापन , तीन चीजें मुझे बेहद प्रिय हैं । मित्र बहुत कम बना पाता हूँ, क्योंकि एक व्यावहारिक व्यक्ति में जो छुलापन होना चाहिए, उसका मुझे में निदान्त अभाव है । "

कविता में केदारनाथ गिह बिम्ब- विधान पर सर्वाधिक ध्यान देते हैं । वृत्ति उनके लिए बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय वस्तु में होता है, उतना ही उनके रूप में भी । विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है । चित्रात्मकता उनके काव्य की एक विशिष्ट विशेषता है । प्रकृति के प्रति आकर्षण श्री गिह के भावों का आलम्बन रहा है । ग्रामीण जंगल के प्रति उनका प्रेम एक लम्बे और तक नगरीय वातावरण में रहते हुए भी कम नहीं हुआ है । अपने वक्तव्य में श्री गिह स्वयं स्वीकारते हैं, " ऐसे कठोर, मक्का के क्षेत्र और दूर दूर तक फैली फाटपिछों की शाय बाज भी मेरे मन पर उतनी ही स्पष्ट है जितनी उस दिन थी, जब मैं पहली बार देगात के ठेठ वातावरण में शहर के धुँधले और उत्तलः सफ़िद आकाश के नीचे जाया ? "

केदार नाथ गिह का व्यक्तित्व एक मनोवैज्ञानिक

१- केदार नाथ गिह - परिचय (तोररा सम्पादक) पृ० ११३

२- वलो , - वक्तव्य (, ,) पृ० ११४

का व्यक्तित्व है। मनोविज्ञान में वर्णित मानवोद्य केतना के तीन अंगों -
 चेतन, अचेतन तथा अचेतन - की भूमिका तथा महत्त्व को बिना समझे डा०
 सिंह के काव्य की समझना निराधार तथा निर्मूल है। केदार नाथ सिंह स्वयं
 कहते हैं, " मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जापुनिक जीवन की जटिलताओं
 और अन्तर्विरोधों को व्यक्त करने के लिए लोक साहित्य, धर्म, पुराण तथा
 एरिहान के खण्डहरों में बहुत से ऐसे ज्ञात प्रतीक और अदृष्ट बिम्ब पड़े हुए
 हैं जिनको लोग के द्वारा नयी कविता की सम्भावना का पथ और भी प्रशस्त
 किया जा सकता है। "

कैदारनाथ गिह का रक्ताकार- व्यक्तित्व
 प्राणिक, विश्व तथा पित्रों की गहायता से ही मानव अभिव्यक्ति को गुलम
 मानने के पक्ष में है । " तीगुरा गप्ताक " में प्रकाशित अपने वक्तव्य में श्री
 गिह स्वतः स्वीकारते हैं , " ---- यहां तक कि जब हम शुद्ध विचार के
 क्षेत्र में पहुँच कर गंभीर तत्त्व- दर्शन की चर्चा करते हैं तब भी हमारे उपकेतन
 में कहीं- न- कहीं उन विचारों के वर्ण- चित्र उमरते- भिड़ते रहते हैं । विश्व-
 निर्माण की यह प्रक्रिया पूरे मानव जीवन में फैली हुई है । "

वेदनानाथ सिंह का व्यक्तित्व एक सीधे-पन्धे सामाजिक यथार्थ-प्रिय मनीषी का व्यक्तित्व है। बाफ़ा व्यक्तित्व 'कवि-मनीषी' परिसूः स्वयं (हृदय, यजुर्वेद ४०।८) का वाचक है। व्यक्ति समाज की रूढ़ि है। अतः उसकी शोटी है शोटी चेतन प्रिया किंगी- न किसी ज़रूर में सामाजिक होती है तथा कविता या रचनाधर्मों का सृजन कार्य तो समाज

१- केदारनाथ गिह- वक्राव्य - तीसरा मण्डल: पृ० ११५-११६

2-

के लिये अधिक स्वीदनशील व्यक्ति की कैन थिया है। उसको सामाजिकता पर कोई स्पष्ट नहीं कर सकता। निष्कर्षतः कविवर सिंह का जैसा व्यक्तित्व है वैसे ही सामाजिक काना है प्रधान उनका काव्य है। सामाजिक यथार्थ की उन्होंने अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है। कविता का बोध जितना केदार नाथ सिंह के व्यक्तित्व में समाहित है शायद ही किसी रचनाकार को ही हो। कविता का बोध ही गम्मतः उनको एक नन्हें है नन्हें जोवित पाण की तीव्र अनुभूति प्रदान करता है।

केदार नाथ सिंह का व्यक्तित्व मात्र हिन्दी भाषा के पठन-पाठन तक ही सीमित नहीं, बल्कि बंगला, अंग्रेजी तथा संस्कृत जैसी देशी विदेशी भाषाओं के सम्यक् ज्ञान उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं। उनका कथन है, "विश्वविद्यालय जीवन में प्रवेश करने पर मेरा रुझान बंगला की ओर हुआ और खीन्द्र नाथ के गीतों ने मुझे बहुत प्रभावित किया। फिर धीरे धीरे अंग्रेजी की बाधनिक कविता का गान्दगं भी मेरे निकट करने लगा और उसके माध्यम से कुछ अन्य भाषाओं की कविताओं से परिचय हुआ। बाप वहाँ बाहर मन टिक गया है, जहाँ है कालिदास, मर, बोदलेयर, निराला, बोडेन, डायसन, टामस और जोवनानन्द दास समान रूप से प्रिय लगते हैं। जोवनानन्द दास को 'कलकामि' की 'इमेजरो' एक 'दृश्य गन्धमय निर्जन कान्तार' की तरह लगती है, जिसकी विराटता की शाय मेरे मन पर बहुत गहरी है।"

केदारनाथ सिंह का व्यक्तित्व मानववाद का पोषक रहा है। उनका मन बाँबीस घण्टे सुता रहता है ताकि वे ज्ञान-पाप के जीवन की हलकी है हलकी जायाज को भी प्रतिबिम्बित कर सके। मानव-मूल्यों तथा समाज के प्रगति तत्त्वों का रस-रसाव डा० सिंह के व्यक्तित्व

की अपनी पहचान है। उनका कथन है : “ समाज के प्रातिमूर्ति तत्त्वों
जैसे मानव के उच्चारण मूल्यों की परत में ही रचनाओं में बांधी है, या
नहीं, मैं नहीं जानता। पर उनके प्रति मेरे भीतर एक विश्वास, एक लालसा,
एक लपट जल रही है, जिसे मैं हर प्रतिकूल फाँके में बचाने की कोशिश करता हूँ,
करता रहूँगा। ”

मूलतः कविवर केदार नाथ सिंह का व्यक्तित्व
मत्स्य, शिव, हनुमान का प्रत्यक्ष स्पर्श है तथा उनकी दृष्टि विश्वव्यापिनी है।
वह मानव हृदय के गुह्याति-गुह्य कोण में प्रविष्ट हो उसके मर्म जान लेती
है और अपनी भाषा में उसे गह्वरय जनों तक पहुँचा देती है। केदारनाथ सिंह
जैसे प्रतिभाशाली कवि तथा कवि-कीर्ति प्रकृति रखने वाले पुरुषों की
सर्वदा समाज की वास्तविकता रहती है। कवि श्रेष्ठ केदार नाथ सिंह वक्त
के बंधन से पूर्ण साधन हैं। उक्तः उनको काव्य प्रतिभा के विषय में ये
पंक्तियाँ प्रमोचन ही जान पड़ती हैं -

“ जो वक्त की बांधी है, खरदार नहीं है
वे होंगे कुछ बोर, कलम-कार नहीं है। ”

केदारनाथ सिंह का व्यक्तित्व समाज और
प्रकृति की ईश्वरीय रचना रूप में देखकर उन्हें अपना गैरा भाव रहता है तथा
अपने हृदय में निहित हुए दिव्य मंदिर की चारों ओर पहुँचा कर प्रातःकालीन
मुदित विहंगों के पसरव में मंगल की जागृति का परिचय देता है, वही धन्य
है, वही देश और समाज का मुख उज्ज्वल करता है, बोर से ही प्रतिभाशाली

व्यक्तित्वों का काः शरीर जरा- मरण के मय से मुक्त रहता है । केदार
नाथ सिंह जैसे कवियों के लिए मर्तुहरि ने ठीक ही कहा है :

‘जयन्ति ते सुकृतिनो रणसिद्धा क्वीश्वराः ।
नास्ति येषां काः काये जरा मरणञ्च भयम् ॥

000



तृतीय अध्याय

वेदार्थनाथ सिंह : हस्तित्व

तृतीय अध्याय

केदारनाथ ग्रिह का कृतित्व

‘कमी, बिल्कुल कमी’

प्रयोगवश के जनक ‘अज्ञेय’ के सम्पादन में प्रकाशित ‘तीसरा सप्तक’ में संग्रहित रचनाओं के पश्चात् ‘कमी, बिल्कुल कमी’ कविवर ‘केदारनाथ ग्रिह’ की सशक्त लेखनी का मुफल है। ‘कमी, बिल्कुल कमी’ का प्रथम संस्करण सन् १९६० ई० में नया साहित्य, प्रकाशन इत्यादि से प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् प्रस्तुत रचना संग्रह का द्वितीय संस्करण सन् १९८० ई० में संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हाफु, से प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत संग्रह में ‘तृतीय’ रचनाएं हैं।

नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर कवि श्रीष्ट ‘केदारनाथ ग्रिह’ द्वारा विरचित ‘कमी, बिल्कुल कमी’ हिन्दी काव्योदधि में प्रकट हुई आधुनिक एवं नूतन भाव-तरंग ‘नयी कविता’ की एक प्रमुख, प्रसर और प्रामाण्य पहचान प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत संग्रह में सम्प्राप्ति ३६ कविताएं सन् १९६० से दो दशकदावधि में लिखी गयी हैं। आः हिन्दी काव्य की नवीनतम शैली, बाँदिकता, भाव-बोध एवं अनु-भूति के पराजल पर ये विभिन्न शोष्किक रुक्त रचनाएं साहित्य पथिक के लिए एक मील का पत्थर ही नहीं, पंख भी हैं।

“तीसरा सप्तक” में केदारनाथ सिंह ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया है - “समाज के प्रागैश्वर्यपूर्ण तत्त्वों और मानव के उच्चतर मूल्यों की परत मेरी रचनाओं का लक्ष्य है या नहीं, मैं नहीं जानता। पर उनके प्रति मेरे भीतर एक विश्वास, एक लालसा, एक लक्ष्य जल रहा है, जिसे मैं हर प्रतिभुल कर्तव्य से बचाने की कोशिश करता हूँ, करता रहूँगा।” यह मूल्य केना ही उनकी कविता का “कभी”, बिल्कुल “कभी” की लगभग बाधे से अधिक रचनाओं का प्रेरक तत्त्व रही है और इसी के सहारे आधुनिकतावादी कवियों ने वे अपने को जलग करते रहे हैं।

कविवर केदारनाथ सिंह का “कभी”, बिल्कुल “कभी” में विपुल प्रतीतिकार रूप प्रकट होता है। वापके प्रतीतों में सामाजिक केना का स्वर स्वरित है। इस संग्रह की कुछ रचनाएँ यथा- “दीपदान”, “हुपहरिया”, “धानों का गीत” बाधि लोक-केना प्रधान हैं, जो सामाजिक केना का वाहक हैं। इनकी रचनाओं में माणा, लय और विम्ब-योजना की विशिष्टता चार चाँद लगाती है। इनकी कविताओं में प्रयुक्त माणा में लोक जीवन की भीनी गंध है। यह गंध भी भोजपुरी अवल की है, परन्तु इस गंध में लोक-जीवन का संघर्ष नहीं, अपितु लोक-जीवन की प्रधानता है, उसका कोमल पक्ष है। कविवर सिंह ने लय में तरह तरह के प्रयोग किये हैं। विम्ब-योजना पर जिनका ध्यान इस कविता संग्रह में कवि ने प्रदान किया है उतना सम्भवतः अन्य नये कवियों ने नहीं किया।

“तीसरा सप्तक” में उनके माणा के अंश हैं उनकी विम्ब योजना पर स्वाधिक ध्यान देने पर बल है, “मानव संस्कृति

के विकास में कवि का योग दो प्रकार से होता है- नवीन परिस्थितियों के तल में अन्तःसलिला की तरह बहती हुई अनुभूत तल के आविष्कार के रूप में तथा अज्ञेय विषयों की कलात्मक योजना के रूप में ।^१

सृष्टि की पौर- पौर में समाकर सृजन और कृत्तृत्व के परमाणुओं को आवेशयुक्त कर एक नयी ऊर्जा उदेलित करने की मिशनरी अभिलाषा से प्रेरित और स्फूर्त कवि अपने अन्तर् में ही रहा साहित्यिक क्षमता को निम्न प्रकार व्यक्त करता है :

‘ मैं
 कर्म परिवर्तन की
 एक क्लृप्त प्रक्रिया हूँ
 जिसके भीतर
 ये लोग
 फुली मिली हैं । ’ २

‘ कमी, बिल्कुल कमी ’ की ‘ प्रक्रिया ’ रचना हिन्दी काव्य की नवीनतम शैली, बौद्धिकता, भाव-बोध, काव्य एवं अनुभूति के धरातल पर साहित्यिक पथिक हेतु माल का पत्थर ही नहीं, पत्थर भी है ।

कवि की उदाम चाह धरती पर गुलाब रोपने की है, परन्तु परम्परागत व्यवस्था में जहाँ पुरखों के हाथों तुलसी के विखे और बरगद जगह- जगह रोपे गये हों, नये रोच और नयी केतना

१- केदार नाथ सिंह - वक्तव्य - तीसरा सप्तक पृ० ११५

२- ‘ ‘ - प्रक्रिया (कमी, बिल्कुल कमी) पृ० ६

तथा प्राति के प्रतीक गुलाब को रोपे जाने हेतु जाह मयस्सर नहीं। कवि को प्रातिशील केना, जो सामाजिक केना है, प्रतिकूल इदियादिता की चट्टान है टकराकर मर्मास्त हो उठती है तथा निम्न पंक्तियों अगणद युक्त शब्दों में कवि के मुक्त कंठ है बरबान निकल पड़ती है :

छोटे है वागन में
मां ने लगावे हैं
तुलसी के घिरवे को
फिता ने उगाया है
वरणद झानार
मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ । १

तोत्र कृपुति, नर उपमानों, बलकारों और नूतन प्रतीकों के माध्यम है धार्मिक शास्त्र , उग्रवाद और कृम पर किया गया बौद्धिक प्रहार दर्शनीय है तथा यही हम रचना-ग्रह की मौलिक पहचान है ।

प्रस्तुत ग्रह की अन्तिम रचना ' गुलाब को पूर्व सन्ध्या पर ' एक उत्तम शक्ति , गहरी और गहन व्यंग्य है , तथा प्रहार भी आज की स्वार्थपरक और स्वाधिकारी राजनीति पर । कवि को सामाजिक वास्तव का सतत बोध है । इसलिए आज के राजनैतिक भूरे मैदानों की कराल, लफटपाटी जिल्वा और उनके तीक्ष्ण दन्ताग्रों में लपकाय फँसे हुए जनता की दुर्दशा और निरीक्षता पर उसका कवि हृदय

तिरस्कार पूर्वक कह उठता है :

मेडिये मैं फिर कहा गया है
 अपने जबलों को सुला रहे
 यह गारा देस
 उम्में फाँककर देसना चाहता है
 अपना चेहरा
 अपनी बालें
 अपना ललाट

दूसरा उपाय नहीं है
 जौ ह्मा सम्म्य दूगरी मड़क नहीं है
 सिवा उस मड़क के
 जिस पर बच्चों के खेलने की सरस फाही है

० ० ०

शहर को
 भूस या जहरीली गैस मैं कब भी बचाया जा सकता है
 कार सिर्फ़ बहि फात चल जाये
 कि मड़क पर जौ पहला जादगी मिलेगा
 उसका नाम क्या है ? १

संगीत में . 'ओ , बिल्कुल ओ ' में
 सम्मिलित समस्त रचनाएँ अपने कथ्य और तैवर के आधार पर 'नयी कविता'

१- केदारनाथ सिंह - चुनाव को पूर्व सन्ध्या पर ' - ओ , बिल्कुल ओ '

के श्रम में अभिवृद्धि की जायेगी। इन रचनाओं की भाषा आम बोलचाल की है। अतः उसमें प्रचलित उर्दू के ज़ेद शब्द तथा हिन्दी के तद्भव शब्द भी हैं, परन्तु बिना बोधि में कहीं ज़रूरत तथा काव्यानुभूति में कहीं भी स्वरूप को बिधति नहीं होती। इस संग्रह की अधिकतर रचनाएँ युग के यथार्थ हैं। युग के यथार्थ की अभिव्यक्ति के कारण इनकी इन रचनाओं में वैचारिकता का बहुतायत है तथा काव्य पर युग की वैदिकता की गहरी छाप दिखायी पड़ती है।

‘जमीन फल रही है’

‘जमीन फल रही है’ नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर ‘केदार नाथ सिंह’ की प्रसिद्ध कृति है। प्रस्तुत कविता संग्रह प्रकाशन संस्थान, ब्यू- २२, नवीन शाहदरा, दिल्ली- ३२ द्वारा प्रकाशित हुआ। इस कृति का प्रथम तथा द्वितीय संस्करण सन् १९८० में तथा तृतीय संस्करण सन् १९८२ में प्रकाशित हुआ।

प्रस्तुत कविता संग्रह में फौजवादी रचनाएँ हैं, जो अपनी आन्तरिकता की कहानी स्वयं वर्णन करती हैं। कविधर केदार नाथ सिंह को प्रस्तुत कृति ‘कुमार आज़ान- पुरस्कार’ केरल से सम्मानित हो चुकी है। प्रस्तुत कृति कविता के लिए इस वेदक कठिन और चुनौतीपूर्ण परे समय में अपनी गहरी मानवीय व्यंग्य में आप हिन्दी की सम्भवतः सबसे ऐन्द्रिक कविता है। ‘जमीन फल रही है’ पाठक की ‘रीटो’, बत और वास्तव जैसी - जानी पहचानी वस्तुओं के माध्यम से मानव विरोधी शक्तियों के बरत, उनकी कल्पनाशीलता और साहस का आत्मिकता के

साध सम्पर्क कराती हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों ने प्रस्तुत ग्रंथ की रचनाओं को क्लिष्ट तथा अव्यापारिक बताया है। उदाहरण के लिए - डा० रामदश मिश्र का कथन है - " उनको 'जमीन फल रही है' की कवितारं अत्यन्त दुरुह और अस्पष्ट है। वेदार् ने एक सहज कवि के रूप में लोगों का ध्यान आकृष्ट किया था। किन्तु धीरे-धीरे वे वाधुनिक्ता के मोह में अधिक बौद्धिक और दुरुह होते चले गये। "

इस सम्बन्ध में वास्तविकता यह है कि कविवर ग्रिह द्वारा प्रयुक्त शब्दावली अत्यन्त सरल तथा हमारी जानी पहचानी है। उगमें हमारे दिन-प्रतिदिन उपयोग की, हमारे अनुभूत जगत् की, हमारे दृष्टिपटल की तथा हमारी कल्पना और अनुमान की वे सम्पत्त वस्तुएं सम्मिलित हैं, जिनके नाम व केवल विश्व वस्तु अविवर्णों के बीठों पर उपस्थित हैं, परन्तु फिर भी भाषा सरल होते हुए भी कवि की रचनाओं का कथ्य मनोवैज्ञानिक, प्रतीकों के बीच में है होता हुआ मात्र पढ़े लिखे व सम्प्रदाय पाठकों को ही स्पष्ट हो पाता है और इसी कारण विचार को गहनता तथा प्रतीकों की क्लिष्टता के कारण जन-सामान्य की समझ से कविवर ग्रिह की रचनाएं बाहर हैं। कथ्य की गूढ़ता और भाषा की सरलता का उदाहरण द्रष्टव्य है :

‘ कभी अपनी जरूरत सोते जा रहे हैं
जबकि चाफू डोरे लड़िया और स्लेट
ये महज शब्द नहीं
जमीन के अन्दर बिड़ी सुरी है

१- डा० रामदश मिश्र - पुस्तक ग्मीणा- गायतादिक हिन्दुस्तान

दिनांक १६ फरवरी, १९८४ पृ० २३

जिनसे होकर अपनी घर के पाग तक
पहुँचा जा सकता है । ” १

कविवर सिंह की इस कविता-ग्रंथ की
दुखता की प्रोफेसर विश्वनाथ तिवारी ने भी स्वीकारा है । वे एक
स्थान पर लिखते हैं -

“ निःसन्देह केदार नयी कविता के एक समर्थ कवि हैं
और उनकी कविता में मृत्पृथ्वी तथा विराट प्रकृति के प्रति एक गहरी आत्मी-
यता है, पर उन्हें अपनी कविता को एक स्तरे से बचाना पड़ती है । वह
स्तार है दुःखता और व्यथिता का । ”

केदार नाथ सिंह ने बीस वर्षों को अपनी
काव्य साधना में इस वस्तुगत यथार्थ और एक रसता के स्तरे का सम्मेलन : अपने
द्वारे किसी भी सम्कालीन कवि की अपेक्षा अधिक गजब रूप से सामना किया
है । केदारनाथ सिंह ने “ जमीन फूट रही है ” की कविताओं में यदि साहित्य
रेन्द्रिकता होती तो कोई विशेष बात न थी परन्तु उन्होंने इस रेन्द्रिकता
से वस्तु और मृत्पृथ्वी के सम्बन्धों के बीच एक ऐसी नाटकीयता निर्मित की
जो गतिमान है और जो दैनंदिन जीवन की गधारण भी दिखती क्रियाओं
को आधुनिक मृत्पृथ्वी के अस्तित्व की गम्भीर जटिलताओं में जोड़ती है । इन
रचनाओं में “ रोटी ”, “ बेल ” या “ जाग ” का जय मृत्पृथ्वी की गम्भीर

१- केदार नाथ सिंह- लड़कें (जमीन फूट रही है) पृ० ४३

२- लंपा० डा० विश्वनाथ तिवारी - दस्तावेज १२ , अगस्त १९८१ ,

पृ० ४८

भावलीला, कम और स्वप्न एंगार है वाकार जुड़ा है। जिस शोणक
एमाज व्यवस्था में हम जोधित हैं वहाँ नियामक शक्तियाँ वस्तु के मात्र एक
अर्थ उपयोग को ही उपस्थित करने दे रही हैं और यह उपयोग वस्तु अम-
जोवी मनुष्य के काम की सामाजिक प्रकृति को शिषा रही है। केदारनाथ
रिंह ने 'जमीन फल रही है' की कविताओं में दैनिक जीवन की साधा-
रण तथा मामूली वस्तुओं का जो वास्तव्यलोक उपस्थित किया है उसे यदि
उक्त सन्दर्भ में देखा जाये तो हमको ज्ञात होता है कि इमानियत का भी
बाज के सन्दर्भ में ऐसा मार्गक प्रयोग किया जा सकता है।

संक्षेप में, 'जमीन फल रही है' कविता
संग्रह में कवि बा. की यथार्थता, व्यवस्था की दोषपूर्णता, सम्पत्ता,
बुझी, जनसाधारण को छुटन तथा पीड़ा और उसके संघर्ष का चित्रण
एकता की भाषा के माध्यम है करता है। कवि की प्रस्तुत संग्रह की कवि-
तारें अमानवीय दबाव का विरोध करती हैं तथा बाधनिक समय की सामा-
जिक विण्णतियों का सफलतापूर्वक चित्रण करती हैं। अपनी रचनाओं के
माध्यम है कविवर रिंह व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहते हैं। उन्हें लोहे
है ज्यादा आदमी के गिर पर भरौण है :

‘ एक फावड़े की तरह उम्मे पीट टिकाकर
एक समूहो उग्र काट लै के बाद
में इस क्लीषे पर पहुँचा हूँ
कि लोहा नहीं
सिर्फे आदमो का गिर उसे लौड़ सकता है । ’ १

केदार नाथ गिह के प्रस्तुत ग्रंथ की अधि-
कांश रचनाओं में सामाजिक तथा वैयक्तिक दोनों भूमियों की सीमा रेखाओं
का चित्रण हुआ है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की ताजगी एवं प्रगति-
त्मकता के माध्यम से लोक-कैना चित्रित हुई है जो सामाजिक कैना का
प्रमुख घटक है। केदार नाथ गिह को रचनाओं से स्पष्ट है कि वे संस्कृति,
लोक-संस्कृति, लोक-जीवन एवं लोक-परिवेश की अभिव्यक्ति की
सफलता तथा वारीकी से करते हैं जिससे लगता है कि वे आन्तरिकता को
वाचसिकता से पाग रहे हैं। इस तथ्य की पुष्टि कवि की 'माफ़ी का
पुल' शीर्षक कविता में होती है :

मेरी पहली बार
स्कूल से लौटते हुए
उमड़ी लाल-लाल ऊंची मेहरावेँ देखी थीं
यह गर्दियों के गुरु के दिन थे
जब पूरब के आसमान में
सामरों के फुण्ड की तरह छैने फगारे हुए
धीरे-धीरे उड़ता है माफ़ी का पुल । १

यहाँ माफ़ी का पुल छंद फयरों द्वारा निर्मित पुल ही नहीं, बल्कि मनुष्य
को आकांक्षाओं और स्वप्न का प्रतीक है।

संक्षेप में, 'जमीन फर रही है' कवि र

कैदार नाथ सिंह की मानव नियति का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करानेवाली, अमानवीय दबाव का विरोध करने वाली, बाज की राजनैतिक तथा सामाजिक विप्लवितियों का चित्रण करने वाली तथा सामाजिक चेतना के प्रति कवि की प्रतिबद्धता घोषित करने वाली एक सफल कृति है।

‘यहाँ है देशी’

‘तीगरे सप्तक’ में एकलित रचनाओं, ‘‘भी, बिल्कुल भी’’, तथा ‘‘जमीन फूट रही है’’ के पश्चात् ‘‘यहाँ है देशी’’ कविवर कैदार नाथ सिंह की लेखनी का सुफल है। ‘‘यहाँ है देशी’’ का पहला संस्करण सन् १९८३ ई० में तथा दूसरी आवृत्ति सन् १९८४ ई० में राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली में प्रकाशित हुए। प्रस्तुत काव्य संग्रह में श्वालीस रचनाएँ हैं, जो समाज के प्रातिशोभ तत्त्वों और मानव के उच्चतर मूल्यों की परस करने हेतु कर्माँटी की भूमिका प्रस्तुत करने में पूर्णरूपेण समर्थ हैं।

कवि के प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं को पढ़कर यह स्पष्ट रूप से महसूस होता है कि कवि का मूलभूत रुमानी काव्य व्यक्तित्व की बदलती हुई परिस्थितियों में उसकी कमजोरी बनकर नहीं, बल्कि एक ऐसी शक्ति बनकर जाया है, जिसके तहत वह मनुष्य की अपने चारों ओर की दुनिया में सहज दितव्यी, वस्तुओं में रचने-बसने की गहन रमिकता और रेन्द्रिय स्वीदना के मरपूर प्रयोग के मार्ग निकाल लेता है।

‘ यहाँ मैं देखी ’ की लगभग सम्पत्ति रचनाएं कैदार नाथ गिह की सज्जा की ओर उन्मुख करती हैं। कवि ने जाधुनिवत्ता-वादी या प्रगतिवादी दृष्टि से स्वोक्त विषयों के दायरे में अपने को न बांधकर जमीन से रह्य प्रसार के बीच मैं अपने विषय चुने हैं। वहीं ‘ देहाती कार्यकर्ता ’ हैं, ‘ कहीं ’ टूटा हुआ ट्रक ‘ हैं, कहीं ‘ पानी में गिरे हुए लोग ’ हैं, कहीं ‘ बनारस ’ हैं, कहीं ‘ कीड़े की मृत्यु ’ हैं ‘ कहीं ‘ राजा ’ हैं क्योंकि कविवर गिह ने जीवन के उन छोटे-छोटे दृश्यों, प्रणों और क्षणों को कविता का विषय बनाया है जो उनके पास पास या उम्में में हैं।

कैदार नाथ गिह की रचनाओं में सम्बेदन-शीलता अपने पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। उनकी कविताओं का विषय और भी रहा ही, परन्तु रचना सहजता और सम्बेदनशीलता से रचनिकता ही उठो है तथा एक विशेष मानवीय सन्दर्भ से अपने को जोड़ लेती हैं। आपकी बिम्ब कैना एक ओर वस्तु के सूक्ष्म रूप को पल्लवान करती है तो दूसरी ओर भाव-लय से वस्तु को अन्वित कर देती हैं। ‘ बनारस ’ कविता का तथ्य का सबल प्रमाण है :

‘ ---- बिनी जलपिप्त सूर्य की
देता हुआ व्यर्थ
शतावधियों से लगी तरह
गंगा के जल में
अपनी एक टांग पर सजा है यह शहर
अपनी दूसरी टांग से
विस्तृत गैरखर । ’ १

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ की 'ऊंचाई'

शौणिक कविता अपने शीटे से क्लेश में बहुत महत्वपूर्ण हो उठी है। कवि ने जीवन के उस काल्पनिक वादों के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए इस बात पर बल दिया है कि मानव जीवन गामाजिक - केना के साथ मिलकर कार्य करते हुए ही अपने उच्चादर्शों को प्राप्त कर सकता है। समाज है वही उसके वैभव का मूल्य ही को मात्र नहीं है :

‘ मैं वहाँ पहुँचा
बौर ढर गया
मेरे शहर के लोगों
यह कितना भयानक है
कि शहर की सारी सीढ़ियाँ मिलकर
जिम महान ऊँचाई तक जाती है
वहाँ कौई नहीं रहता । ” १

वस्तुतः कविवर ग्रिह की रचनाओं में महज्जा तथा मादगी कूट-कूट कर मरी है। 'बुनने का समय' तथा 'सम्पादक के नाम पत्र' कुछ इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। कवि ने 'बुनने का समय' रचना में युवा केना को जगाने का प्रयास किया है। विश्व के अन्य भागों में मृत्यु केना अवस्था में है तथा अपने विभिन्न उपमों में रह ही प्राप्ति के मार्ग पर ज़रूर हो रहे हैं तथा दूसरी ओर हम हैं (मार-तीय) जो अवैतनावस्था में हैं क्योंकि हमारी (भारतीयों की) उद्देश्य-

१- केदारनाथ ग्रिह- ऊँचाई (यहाँ से देखो) पृ० ५६

विहीनता तथा विशाहीनता हमें अपनी कर्तव्य तथा दायित्व से जला हटा कर दूटे हुए धागों में उलझा रही है :

‘ उठो कि जाना कहीं फँस रहा है
 उठो कि मरनी में पड़ गयी है गाँठ
 उठो कि नावों के पाल में
 कुर सूत कम पड़ रहे हैं
 उठो
 फाड़ों में
 मौजों में
 टाट में
 दरियों के बड़े हुए धागो उठो । ” १

इसी प्रकार का भाव ‘ सम्पादक के नाम
 फत्र ‘ रचना में परिलक्षित होता है -

‘ प्रिय सम्पादक जी
 बाफ़ी कविता मांगी है
 जोर पोर शहर में पिछले कई दिनों से गिर रहा है पानी
 झूलताधार पानी
 मे चाहता हूँ कविता से पहले
 यह स्वर आप तक पहुँचे

० ०

आर मे नमक का देला होता

वारिस को देखा रखा
 अपने अन्दर, अपने बाहर
 पर यह मुमकिन नहीं है सम्पादक जी
 मुझे बाजार जाना है
 और दवा लानी है । * १

इस प्रकार कवि की इस रचना ग्रंथ की अधिकतर रचनाओं में एहजात और सादगी का आकर्षण है और उनके एहज वर्णनात्मक रूप के अन्तर्गत कोई कृत्रिम बाँधकता या क्लिष्टता का भाव प्रविष्ट नहीं होता । परन्तु, कवि की कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें शिल्पात्मक दुरुक्ता के दर्शन होते हैं । कवि ने दुरुक्ता से काम लिया है । उदाहरण के लिए 'शीतलहरी' में एक बूढ़े जादमी की प्रार्थना 'कुछ' 'सी प्रकार की है जिनमें कवि ने विम्ब न बनाकर क्लिष्टता से प्रस्तुत किया है :

* एक कौयला फाँकने वाले बेलवे में
 क्या मैं बाजार जाऊँ
 और अपनी आत्मा के लिए लूँ
 एक अच्छा सा कटोप । ** २

कविवर सिंह की कौन रचनाएँ यथार्थ
 से रचित हैं । आर्थिक स्वतन्त्रता पर तीखा प्रहार करते हुए 'अनस्ति

१- केदारनाथ सिंह- सम्पादक के नाम पत्र (यहाँ से देली) पृ० ६०-६१

२- .. - शीतलहरी में एक बूढ़े जादमी की प्रार्थना पृ० ६६

का काम ' शीर्षक कविता में अपनी ग्रामीण कृषक की दलीय दशा का चित्रण किया है। कवि की मुक्त लेखनी का रचना में लिखना चाहती है कि स्वतन्त्रता प्राप्त हुए लगभग चालीस वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु कृषक के पास आज भी कृषि के उन्नत साधन कुलम नहीं है -

“ एक टूटा हुआ हल मेह पर पड़ा था
 बार एक चिड़िया बार-बार, बार- बार
 उसे अपनी चौंच है
 उठाने की कोशिश कर रही थी। ” १

एपीम में, कविधर केदार नाथ सिंह ने ' यहाँ से देखो ' रचना संग्रह को रचना कर जीवन के प्रति सम्मान और उच्चादर्श को स्थापित किया है। ' कोरे की मृत्यु ' शीर्षक कविता उनके इस वादश का परिचायक है। प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में स्पष्ट है कि कवि को भारतीय समाज के प्रति गहरी खेदना है। व्यवस्था में व्याप्त दोषों को ' टूटा हुआ ट्रक ' नामक कविता में दर्शा कर एही वर्षों में कवि कर्म का निर्वाह करते हैं। कुछ मिलाकर इस संग्रह की रचनाएँ अपनी सहजता और जगज्जा के तनाव में गुजरती हुई समकालीन जीवन-बोध तथा यथार्थ की झोटी- झोटी दीप्तियों को उभारती हुई सामाजिक संघर्षों के वास्तविकता को अधिक स्पष्ट देखने में सक्षम प्रतीत होंगी।

१- केदारनाथ सिंह- जनक्ति का काम (यहाँ से देखो) पृ० ४८

‘काल में सारस’

‘काल में सारस’ कवि श्रेष्ठ कैदार नाथ सिंह की सशक्त लेखनी का प्रतिफल है। ‘यहां से देखो’ काव्य संग्रह के पश्चात् कविता कामिनी के कर्माध्यक्ष कैदार नाथ सिंह की प्रसृत कृति ‘काल में सारस’ अनुनातन हिन्दी कविता की एक नूतन मोड़ देने में सार्थक एवं सफल प्रयास है।

‘काल में सारस’ काव्य संग्रह का प्रथम संस्करण सन् १९८८ में, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११० ००२ से प्रकाशित हुआ है। प्रसृत संग्रह में विभिन्न शीर्षक युक्त ६१ रचनाएं हैं, जिनका कलेवर १०८ पृष्ठों में है। काव्य संग्रह में आवेष्टित वैशिष्ट्य तथा शिल्प तन्त्र का सम्यक् चित्रण फ्लैप पर डा० परमानन्द श्रीवास्तव, नयी कविता के सुधी समीक्षक द्वारा वर्णित है। कृति नयी कविता के वरर कवि श्री त्रिलोक शास्त्री की समीक्षा है।

कैदार नाथ सिंह द्वारा रचित ‘काल में सारस’ सन् १९८३ से ८७ तक अर्थात् लगभग चार वर्षों के अन्तराल में व्याप्त दुर्घटना से मृतप्रायः जिजीविषा की एक बार पुनः उपसृब्ध कराने के निरन्तर संघर्ष का प्रतिफल है। कविताओं की भाषा सरल, गहज तथा बोधगम्य है। परती-पराठ, गली-चौराहे, देहरी चौक, नदी-रेत, डूब, सारस, बढ़ियल, चिट्ठी, बूढ़े बापि जैसे बोलचाल की कवि कैदार नाथ सिंह के शब्दों का तथ्य के प्रत्यक्ष सङ्गत हैं कि कविवर सिंह की कितनी फहरा जीवन पर है उतनी ही कविता पर।

चतुर्थ अध्याय

कैदारनाथ सिंह के काव्य में सामाजिक चेतना

चतुर्थ अध्याय

“कैदारनाथ सिंह के काव्य में सामाजिक चेतना”

“तीगरे सप्तक” में सामाजिक चेतना

नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर “कैदारनाथ सिंह” एक ऐसे कवि हैं जो अपनी प्रसर तथा प्रामाण्य पहचान नयी कविता के क्षेत्र में बनाये हुए हैं। प्रयोगवादी कविता के जनक “लक्ष्मी” के सम्पादन में तीगरे सप्तक में प्रकाशित रचनाओं के अतिरिक्त “कमी”, “विस्तृत कमी”, “जमीन फर रही है”, “यहाँ से देखो”, “अकाल में सारा” आदि रचना संग्रह हिन्दी काव्यावधि में प्रस्तुत हुए बाधुनिक एवं नूतन भाव तरंग नयी कविता को लाभान्वित प्रवृत्तियों को समेटे हुए अपनी आभास्य पहचान प्रस्तुत करते हैं।

कैदारनाथ सिंह लोक जीवन से जुड़े हुए हैं। इनकी रचनाओं में मानव जीवन के आन्तरिक तथा बाह्य तत्त्वों का समन्वित रूप संकृत होता है जो सामाजिक चेतना का मूलधार है। क्योंकि सामाजिक चेतना मनुष्य की समाज से सम्बन्ध रखने वाली मानव मन की वह

शक्ति है, जिसके माध्यम से मानव समाज के आन्तरिक एवं बाह्य तत्त्वों का अनुभव करता है तथा सामाजिक व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार सामाजिक चेतना समाज से सम्बन्धित विभिन्न विचार, दृष्टि-बोध, धारणाओं एवं भावनाओं का कुल योग है, जिनके द्वारा मनुष्य तथा समाज निरन्तर परिवर्तनशील जगत् का वास्तविक रूप अन्तर्ग्रहण करते हैं। वस्तुतः 'सामाजिक चेतना जनता का आत्मिक जीवन है, वे भावनारंभक और दृष्टिविन्दु हैं जो उनके गहरे कामों में उनका पथ प्रदर्शन करते हैं।' केदारनाथ गिह की रचनारंभक युगीन यथार्थ है जुड़ी हुई है। अतः उनकी रचनाओं में सामाजिक चेतना का स्वर स्वरित है।

केदारनाथ गिह की रचनारंभक 'तीगरा सप्तक' में प्रथम बार प्रकाशित हुई, जिनके आधार पर कविवर गिह को प्रणयप्रतीकार कहा जा सकता है। केदारनाथ गिह प्रणय में विरह की विभिन्न स्थितियों को रूपायित करने में गिह हस्त रचनाधर्मों की भूमिका निभाते हैं। इनकी कविता का स्वर लोक चेतना से सम्पृक्त सामाजिक चेतना है। केदार नाथ गिह ने अपनी कविताओं में लोक जीवन की अनुभूति को प्रतीक रूप में ढाला है। कवि विदा बेला में प्रिया के अंचल में, 'टूटता फल' तथा 'फल से काँफला पाण' बांधना चाहता है -

“रुको, अंचल में लुप्त हो
यह स्मीरन बांधूँ,
यह टूटता फल बांधूँ
एक जो इन उंगलियों में
कहीं उत्सर्ग रह गया है
फल-सा वह काँफला पाण बांधूँ।” २

१- वि० अफनाखेव- मार्क्सवादी दर्शन पृ० १८१

२- केदारनाथ गिह- विदा गो. (तीगरा सप्तक) पृ० १३५-३६

यहाँ तक कि कवि अपनी जाती हुई प्रिया
को निमन्त्रण का बार देना नहीं भूलता :

“ पर तुनी तौ
तुलै झूटे में तुम्हारे
बार पहला बाध दूँ
हां यह निमन्त्रण बाध दूँ । ” १

यथार्थवादी जैना केदार नाथ सिंह की
रचनाओं में अभिव्यक्ति है । कवि ने मात्र प्रिया के वियोग का ही चित्रण
नहीं किया अपितु प्रिया दर्द की वेदना को भी स्वर प्रदान किया है ।
फरते हुए नीम के पत्ते वियागिनी की मर्यान्तिक पीड़ा को विगुणित
करते हैं, क्योंकि महान् सर्दी को रातों तौ व्यतीत हो गयीं , परन्तु
ग्रीष्म ऋतु के लम्बे तथा प्रकाशमय दिन वेदना को बार भी तीव्रतर बना
देते हैं :

“ फकर ठहर गयी दुपहरिया
रुककर रहम गयी चाँचाई
बार चक्कने लगी तरखाई
प्रातः, आगये दर्दलि दिन , बीत गयीं रातें ठिठुरन की । ” २

कविवर सिंह ने प्रायः अपने गीतों को
लौकानुभूति एवं लोक स्वीदन से जोड़कर लोक प्रगीतात्मक शैली में ढाला
है । यथा- रात, दुपहरिया , पपीहा- दिन आदि गीतों में उन्होंने

१- केदार नाथ सिंह - विदा गीत (तीसरा सप्ताक) पृ० १३६

२- वही , पृ० १२४

व्यक्ति की भावनाओं को गीतों के माध्यम से चित्रित किया है। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को, जो सामूहिक अनुभूतियों का मूलधार है, इन गीतों में गंभीरता से व्यक्त किया है। बाफो रचनाओं में लोक जीवन की अविव्यक्ति, जो सामाजिक चेतना का प्रमुख वायाम है, लोक गीतों में भी होती रही है। कविवर केदारनाथ सिंह ने 'धानों का गीत' कविता लिखकर स्व को विस्तार प्रदान किया है :

‘ फीलों के पानी खूब छिलेंगे ,
 खेतों के पानी बहूँ
 पुरवा के हाथों में शरों छिलेंगी ,
 पुरवा के हाथों में फूल
 बाना जी बादल जरूर
 धान तुलेंगे कि प्रान तुलेंगे
 तुलेंगे हमारे खेत में
 बाना जी बादल जरूर ॥ ’ १

‘ धानों का गीत ’ शीर्षक प्रीति में कविता कालिदास के कुशल किरोर ने सम्पूर्ण काव्यानुभव के साथ व्यक्तित्व तथा सामाजिकता का विलय तैयार किया है। मेघ मालाओं से हुए मूलधार वर्णा तथा वर्णा के जल से धान का रोपण- पोषण तत्पश्चात् धानों को लेकर मानवता की प्राण रक्षा कवि केदार नाथ सिंह की व्यक्तित्व तथा सामाजिकता का विलय है। बादल बावें तथा वर्णा ही हमारे देश- बागियों की ईश- प्रार्थना उनके धार्मिक तथा आध्यात्मिक संस्कारों में विश्वास

को प्रतीक है। इन रचनाओं में लोक-जीवन का स्वर जमिर्व्यक्ति है :

“ धान उगेँ कि प्राँन उगेँ
उगेँ हमारे रेत में,
बाना जी बादल जरूर । ” १

कवि ने ‘ धानों का गीत ’ कविता लिखकर जनता की सामाजिक भावनाओं, आदतों तथा रीति-रिवाजों की व्याख्या की है, जो सामाजिक चेतना की आधारभूमि हैं। ‘ सामाजिक चेतना भावों, सिद्धान्तों, मूल्यों, जनता की सामाजिक भावनाओं, आदतों और रीति-रिवाजों का कुल योग है। ये सब वस्तुगत यथार्थ, मानव समाज और प्रकृति की प्रतिबिम्बित करते हैं। ”

दूसरी, कवि ने ‘ बादल बी । ’ कविता लिखकर दूरदर्शिता का परिचय प्रस्तुत किया है। उस समय बाजारों के प्रति लोगों में जाग्रता थी। देश के राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक नव-निर्माण का स्वप्न प्रत्येक वाँस में था। प्रस्तुत कविता में बीध, विचार और सविदना के स्तर पर वे स्वप्न और हस्तजार लोकोन्मुखी होकर फूट पड़े थे। ये लोक-चेतना ही सामाजिक चेतना के आधार हैं।

केदारनाथ सिंह की ‘ रात ’ शीर्षक कविता लोक तय स्व लोक-परिचय से लिपटी हुई है। इसी तरह ‘ पात नये आ गये ’, ‘ धानों का गीत ’ और ‘ दुपहरिया ’ शीर्षक कवितारें

१- केदार नाथ सिंह- धानों का गीत (तीसरा संस्करण) पृ० १२७

२- वि० बफनास्येव- मार्क्सवादी दर्शन पृ० ३५३

मी लौक गीतों के रंग में डूबी हुई है।^१ **

‘ओमी, बिल्कुल ओमी’ में सामाजिक चेतना

दृष्टि की पौर- पौर में समाकर गृजन
 और कर्तृत्व के परमाणुओं को वावैशुक्त कर एक नयी ऊर्जा उदैलित
 करने की मिन्नरी अभिलाषा से प्रेरित और स्फूर्त कवि अपने अन्तर् में
 ही एही साहित्यिक हस्तक्षेप को निम्न प्रकार व्यक्त करता है :

** ये -

वर्ष परिवर्तन की
 एक बह्मक प्रक्रिया हूँ
 जिन्हे भीतर
 ये लोग
 फाड़ियाँ
 बत्तलें और मविष्य
 हर बीज एक- दूसरे में
 छुली मिली है। ** २

‘प्रक्रिया’ रचना हिन्दी काव्य की नवीन-
 तम शैली, बांझिफता, भावबोध, यथार्थ एवं अनुप्रास के धरातल पर साहित्य
 पथिक के तिर एक मोल का पत्थर ही नहीं पड़ाव भी है।

** एक पारिवारिक प्रश्न ‘शीर्षक कविता

१- डा० जय सिंह- आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० २०३

२- केदार नाथ सिंह - प्रक्रिया (ओमी, बिल्कुल ओमी) पृ० ६

मैं कवि का क्या हूँ :

‘ छोटे से बगीचे में
माँ ने लगाये हैं
तुलसी के विरह की
फिटा ने उगाया है
बरगद के तार ।
मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ । ’ १

कवि की उद्दाम चाह धरती पर गुलाब उगाने की है । परन्तु परम्परागत व्यवस्था में जहाँ पुरखों के हाथों तुलसी के विरह और बरगद जगह-जगह रोपे गये हों , नये मीच और नयी केतना तथा प्रगति के प्रतीक गुलाब को रोपे जाने हेतु जगह मजबूर नहीं । कवि की प्रगतिशील केतना, जो सामाजिक केतना का पर्याय है, प्रतिकूल रुढ़ि-वादिता की चोटान से टकराकर मर्माहत हो उठती है तथा उक्त पंक्तियों में अवसाद युक्त शब्दों में व्यक्त होती है ।

दूसरे , ‘ एक पारिवारिक प्रश्न ’ कविता में अपना नन्हा गुलाब रोप देने की वाकाम्फा के पीछे कवि की वह केतना है जिसे उसके ‘ मैं ’ की केतना कहा जा सकता है । यह ‘ मैं ’ की केतना कवि की कविताओं की वास्तविक केतना है । वह मनुष्य की नियति की , उसकी पीड़ा की , समय के दबाव की अपने स्तर पर निजी बनाकर व्यक्त करता है । केदार नाथ सिंह की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि उनमें

१- केदार नाथ सिंह- एक पारिवारिक प्रश्न (कभी, बिल्कुल कभी) ,

बारा, बाकांता, कृपित तथा जेलैफ की उदासी की क्षाप है ।

केदार नाथ सिंह तथापि हताश नहीं
हैं । एक नयी सुबह की उन्हें प्रतीक्षा है, नवयुग की भोर होगी , ऐसा
उनका सुदृढ़ विश्वास है । उस सूर्य पौखी भोर का हरकारा बनकर कवि
विश्व को आज भी नव युग की प्रतीति का क्रान्तिकारी शब्दों में करा
रहा है :

“ कल उगूंगा मैं ।
बाज तो कुछ भी नहीं हूँ
फाड़ पत्ती फूल चिड़ियाँ घास फुनगी
बाह, कुछ भी तो नहीं हूँ
कल उगूंगा मैं ।

०

०

तुम मुझे , चीन्हीं न चीन्हीं
बहुत सम्भव है कि कल तड़के तुम्हारे विस्तार पर
एक झोटी- गी किरन जनकर फरोसे मैं गिरूं
या एक फाँस की तरह जाकर
कंपा जाऊँ तुम्हें
या चुप तुम्हारे बगीचे में
एक झोटा एग नया पौधा कहीं बनकर उगूँ
या फिर तुम्हारी बाह पर
सहसा विजय की काँफ़ी जयमाल बनकर
बू पड़ूँ । ” १

कवि की गल्ल दृष्टि ने उन धरों को
 चीन्हा है जहाँ सूरज की रोशनी नहीं पहुँच सकी है । ऐसी झार-हाट,
 क्षेत्र-तखिदान , झप्पर-झान और गल-गली में दीपक के माध्यम से
 रोशनी फैलाने का मानवीय उदात्त प्रयास कविवर सिंह ने लोक-कैलाश
 प्रधान रचना 'दीपदान' में निम्न पंक्तियों में किया है :

एक दिया वहाँ
 जहाँ गरीबी रहती है ।
 एक दिया वहाँ
 जहाँ वर्तन मजने से गढ़ा सा दिखता है

० ०

एक दिया वहाँ
 जहाँ धरारा बंधता है ।
 एक दिया वहाँ
 जहाँ पिथरी दुस्तो है
 एक दिया वहाँ
 जहाँ लफ्फा ज्यादा फवरा
 दिन-दिन भर गीता है ।

० ०

एक दिया
 उस फाँटो पर
 जो अजाने कौहरों के पार
 हूब जाती है ।
 एक दिया

उस चौराहे पर
जो मा की गरी राहें
विवश झीन लेता हूँ । १

पूजा- स्थलों की निष्प्रभ वर्धहीनता और उनके गये में फास रहे वातस्वाद की काली विभीषिका की कवि ने " पूर्वा-भास " शीर्षक कविता जो सामाजिक केतना है वीत प्रीत है, में प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम है बहुत कुशलता से उकेरा है :

रात । कहीं
कोई - - - -
मीनार टूटने की आवाज
झर आयी थी
क्या यह सच है ?
एकदम ।
एक मन्दिर के पास
किसी कनवी फरिशी के
फंसे पड़े दीसे थे
क्या यह सच है ?
० ०
शाम ।
किसी बच्चे ने
बुद्ध मूर्ति के आगे
ऊँचा का एक नया मंत्र

गुनगुनाया था

क्या यह सच है ? * १

तीव्र अनुभूति, नए उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से धार्मिक पासण्ड, उग्रवाद और क्लृप्त पर किया गया बौद्धिक प्रहार दर्शनीय है। यद्यपि उष्ण के स्थान पर ऊष्ण रूप जाना बख़तरा है।

केदार नाथ सिंह उन नये कवियों के प्रति-निधि हैं जिनकी काव्य चेतना मुक्तः समाजोन्मुखी है, जो अपने सामाजिक परिवेश के प्रति पूर्णतः सजग हैं। यदि बहिष्कृत की नयी राहों को वे ग्रहण करते हैं तो इसे बाधुनिक प्रभाव ही मानना चाहिए जो स्वयं उचित है। अधिक नये रचनाकारों की एक पीढ़ी भी प्रातिशोत रचना के जालीक को लिए हुए हिन्दी कविता के मंच पर बाधुर्भूत हो चुकी है यह वह पीढ़ी है जो कान्था, रकाकीफ, घुटन तथा मानसिक उच्छ्वस्तता स्व पराजय के समस्त मार्शल के बीच भी नये माव-बोध स्व मन्दिर-बोध के लिए, हिन्दी कविता को उन्हीं राहों पर, युग की अनुरूपता में अग्रसर कर रही है, जिन राहों का निर्देश प्रातिवाद ने किमी समय समूचे दौर के साथ किया था। तभी तो केदारनाथ सिंह 'निराकार की पुकार' शीर्षक कविता में हताश नहीं। सामाजिक यथार्थ दृष्टि ही उनमें वासा, कान्था तथा विश्वास की एक नयी किरण भी जगती है। यह जानते हुए भी कि वर्तमान जीवन विषमता, दुःख तथा दैन्य से बाधित है, कविवर सिंह इसलिए विचलित नहीं होते कि इतिहास की वैज्ञानिक गणना उन्हें भविष्य के प्रति

१- केदारनाथ सिंह- पूर्वाभास (अभी, विलुप्त अभी) पृ० ५६-५७

२- नरेन्द्र देव वर्मा- प्रयोगवाद पृ०

बाग़धातु रखती हैं :

— समूचा विश्व होना चाहता हूँ
भीर है पहले तुम्हारे द्वार पर
तुम मुझे देखो न देखो
कल उगूँगा मैं । १

कैदार नाथ सिंह मानव अभिव्यक्ति का अस्तित्व चित्रों, प्रतीकों और बिम्बों की सहायता से मानते हैं। उन्होंने टोका ही कल है, बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्रायः अशुभव है, यहाँ तक कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र में पहुँच कर गम्भीर तत्त्व दर्शन की चर्चा करते हैं, तब भी हमारे उपकेतन में कहीं न कहीं उन विनारों के वर्णन- चित्र उभरते मिलते रहते हैं । २

कविवर श्री कैदार नाथ सिंह ने 'हम-जो सोचते हैं' शीर्षक रचना में यथार्थ की मनोवैज्ञानिक, व्याख्या की है, जो सामाजिक चेतना का एक आयाग है। प्रसिद्ध रचना 'हम-जो सोचते हैं' में कवि ने मानव की जड़ वादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में प्रतीकात्मक रूपेण उसके विभिन्न आयामों का वर्णन किया है। मनुष्य जिस रास्ते या एक पर चल रहा है उसका कहीं अन्त नहीं है, बल्कि मनुष्य अपने जड़ के दायरे में एक निश्चित केन्द्र तक सिमट कर रह जाता है। जीवन

१- कैदार नाथ सिंह- निराकार को पुकार (ज्यो. विश्व ज्यो) पृ० ३२

२-

..

- वक्राव्य - तीसरा अंक पृ० ११५

हीकर धुरी प्रतिदिन सम्बन्धों की नयी रेखा है प्रारम्भ होती है, परंतु वह लम्बे अन्तराल तक एक निश्चित गति के साथ चल नहीं पाती। कहीं न कहीं किसी न किसी घाण उसमें विराम आ जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में प्रत्यक्षीकरण की जगह जगह प्राप्तता उसका सम्बन्धन जगह-जगह है जो कि हमारी सम्पत्ति की परिधि है बाहर है। यथा- सूर्य की किरणों के साथ हर एक फूल खिलता है लेकिन उसकी गंध जगह-जगह होती है। जगह का बोध केवल उस सत्ता को होता है जिसमें वह निहित है। सन्ध्या का सूर्य जिस प्रकार सागर की गहरी तरंगों में समाहित होता है, हमारे अन्तर सागर का वह रूप ज्ञान के रूप में विद्यमान है, जिसमें स्वप्न के माध्यम से हमारी रंग-बिरंगी कल्पनाओं की अभिव्यक्ति होती है। प्रातः की किरणों में जीवन एक नये संदेश के साथ अंतरित होता है। गुवह के मान में हमारी एक अभिव्यक्ति मो मा के मास को प्रकट कर देती है, जिसका सम्बन्ध सृष्टि के विराट् स्वरूप से होता है :

न रास्ता कहीं सुझा है
न सड़कें कहीं जाती हैं

“ हम ” -

एक जय घोष है
जिसे खा
घर है चौराहे तक
दिन भर भटकाती है।

हर नया दिन
एक सम्पत्ति है
जो हमें जोड़ता है

पर घन्टे की हर चोट
कहीं न कहीं जलगाती है

० ०
० ०

हम चुप हों
पर वह चुप्पी
बच्चे सुनते हैं

बौर यों

हमारा हर शब्द
किसी नये ग्रह लोक में
एक जन्मान्तर है । ** १

** जीने के लिए कुछ शर्तें * शीर्षक रचना
में ६ विवर सिंह ने आज की काली विभीषिका में जीवन के अस्तित्व को
बनाये रखने हेतु कुछ शर्तें दी हैं। हम जीवन के किसी भी मोड़ पर हों ,
शर्तों का अनुपालन अनिवार्य है। जीवन का अस्तित्व धन्य के संवर में अधिक
सार्थक होता है। यथा- दिन का अस्तित्व रात्रि होने से है। रात्रि के
समय विश्रामोपरान्त प्रातः अधिक कार्य करने की जिज्ञासा होती है। यदि
रात्रि न हो तो मानव कब तक कार्य करेगा। वह थककर अस्तित्वहीन हो
जायेगा। यथा-

जरूरी है
हम जहाँ हों
वहाँ से दिखता रहे वह झिलमिलता
पिपतिज

जो केवल हमारा है ।
 हम बढायें हाथ
 तो खुल जाये
 बाहर रास्ते की ओर
 कोई द्वार सपना

- - - -
 - - - -

“ जो हर धन के बाद हमको
 बोलने के लिए बातें
 चौड़ने के लिए तिनके
 बँठने के लिए
 थोड़ी सी जगह दे जाये
 जरूरी है । ” १

केदार नाथ सिंह ने अपने वक्तव्य में
 कहा है - “ समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी-सी- छोटी चेतन श्रिया
 किसी- न - किसी अंश में सामाजिक होती है । फिर कविता तो समाज
 के सबसे अधिक स्वेदनशील व्यक्ति की चेतन- श्रिया है । उसकी सामाजिकता
 अनिवार्य है^२ । ” तभी तो स्वेदनशील कवि केदारनाथ सिंह ने “ कमरे
 का दानव ” शीर्षक कविता में मानवीय चेतना की उस विषम परिस्थिति
 का चित्रण किया है जो कि उसके अन्तःमन में व्याप्त है । प्रदीपण के
 माध्यम से जीवन की नकारात्मक अनुभूतियों को साँफ के धुंधले में अपने दर-

१- केदारनाथ सिंह- जीने के लिए कुछ रत्न

२- केदार नाथ सिंह- वक्तव्य (तीसरा सप्ताक) (कभी, बिल्कुल कभी)

बाजे पर निम्तर प्रतीक्षा करते हुए कवि यह अनुभव करता है कि जो कुछ भी वह कर रहा है उसका अस्तित्व निराशा के आयात में खाना चुन्ना है कि संघर्ष करते हुए भी आशा की धुंधली रेखा भी तिमिर तौम के गहन जात में विरोधित होती दृष्टिगोचर हो रही है, किन्तु फिर भी कवि अपने जीवन के प्रति एकाग्र है। मन्द की लहरों पर अन्धकार लड़ा होकर भी आगे बढ़ने का साहस करता है -

मेरे हाथों से संकल्प छूट जाता है
 डरता नहीं हूँ
 मार उसे जब देखता हूँ
 गुम्सुम, अपराध, उदार
 देखा नहीं जाता है । १

“ हस्तान्तर कर देता हूँ ” शीर्षक रचना में कवि ने जीवन के यथार्थ को सामाजिक परिवेश में प्रातः की प्रथम राशियाँ के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। रात्रि के घौ तम में जूँ और केतन दोनों ही एक जैसे लगते हैं। उनका प्रत्यक्षीकरण, सम्बेदन या कल्पना किसी भी रूप में व्यक्त नहीं होता है, क्योंकि इन सभी के लिए मानवीय केतना का होना अत्यावश्यक है। कवि इसी बात को बार बार विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से व्यक्त करता है कि सामाजिक जीवन की लौयी हुई केतना जो कि ज़ेक प्रकार के उधल-पुधल में लगी हुई है, यदि उसे नव विज्ञान, नव बोध, नव केतना प्रदान की जाये तो ऐतिहासिक रूपण प्रवाह के रूप में, कलरव के रूप में और परिवर्तन के रूप में गतिशील होंगे -

' गुरु हुआ दिन
 लो, मैं
 कौलाहल से पहले
 देश देशान्तर की
 कन्देसी झापहीन
 छुल्लो राहों पर
 हस्ताधार कर देता हूँ ।

० ० ०
 बाकायदा के
 जीवित रैते
 उलगाता हूँ
 उड़ने से पहले
 हर दिशाहीन चिड़िया के
 पर मैं
 उलगाता हूँ ,
 वार कहीं, जीने की
 दैनिक शर्तों पर
 हस्ताधार कर देता हूँ । " १

कविवर सिंह की " दिग्विजय का वस्त्र "

यथार्थ की भित्ति पर लिखी गयी सामाजिक चेतना है अनुप्राणित एक
 प्रसिद्ध रचना है । कविवर सिंह ने दिग्विजय के वस्त्र को समय का प्रतीक
 माना है । समय रूपी वस्त्र व्याध गति के साथ अपने पथ पर क्राणर हो

१- केदारनाथ सिंह- हस्ताधार कर देता हूँ -(कमी, विल्कुल कमी)

रहा है । उसकी गति को कोई भी नहीं रोक सकता । दूरे , इस
रचना में एक तलोन जीवन बोध को स्वरित है -

‘ अभी, विलुप्त अभी
दिग्विजय का वस्त्र इस पय से गया है
मकानों पर उड़ रही हैं धूल
पेड़ थर थर काफ़ी हैं
अभी , विलुप्त अभी-----

० ०

बाह, कौहें उसे रोकें ,
उसे बाधे
फुटफुटे में फिर कहीं वह विला जायेगा ।
चक्रवर्ती कहाँ है वह ,
कौन है हम में ?
दिग्विजय का वस्त्र यों ही चला जायेगा । ” १

कविवर केदारनाथ सिंह के गीतों में बाधु-
निक जीवन-बोध द्रष्टव्य है ।

“ बापकी कविता लोक-जीवन से प्रभा-
वित, अत्यधिक सरल स्वभाव प्रणव स्वच्छन्दतावादी स्पर्क के रूप में उभर
कर बाप उनका कवि व्यक्तित्व अधिक प्रशस्त भूमिकाओं को अपनाकर सच्चे
अर्थों में नये युग की नयी रचयिताओं का बाहक बन सका है । ”

केदार नाथ सिंह की रचनाओं में सामा-
यिक तथा वैयक्तिक दोनों भूमिकाओं की सीमारेखा तक रचयिता का प्रसार

१- केदारनाथ सिंह- दिग्विजय का वस्त्र (अभी, विलुप्त अभी) पृ० ३८-४०

२- डा० शिव कुमार मिश्र- नया हिन्दी काव्य पृ० ४०६

फंलाव हुआ है। "बादल बाँ", "जलखी", "दीपदान", "नये वर्ण के प्रति", "एक पारिवारिक प्रश्न" आदि शीर्षक रचनाओं में अभिव्यक्ति को नयी मंगिमाओं के साथ "सामाजिक कैना" से जुड़ा-पिना सनसत प्रवृत्तियाँ स्वतः ही दिखायी पड़ी हैं। इनकी रचनाओं में लोक जीवन की ताजगी एवं प्रीतितात्म्यता के माध्यम से कवि की सामाजिक यथार्थ दृष्टि से युक्त सामाजिक कैना चित्रित हुई है। "केदारनाथ सिंह ऐसे ही कवियों के प्रतिनिधि हैं जो कला तथा शिल्प की नयी मंगिमाओं में आज के सामाजिक जीवन के यथार्थ और नये सौन्दर्य-बोध को प्रातिशील भूमियों पर अभिव्यक्ति दे रहे हैं।"

"जमी, बिल्कुल जमी" नामक ग्रंथ में सम्मिलित की गयी रचनाएँ जमी कथ्य और तैवर के आधार पर नयी कविता अभिव्यक्ति की जायेगी। इन रचनाओं की भाषा आम बोल चाल की है। उदा: इनमें प्रचलित उर्दू के बहुतेरे शब्द और हिन्दी भाषा के तदुक्थ शब्द भी हैं, परन्तु विचार-वीथि में कहीं भी बाधा या अवरोध और काव्यानुभूति में कहीं रुक्कन महसूस नहीं होता। "केदारनाथ सिंह के गीतों में कुम्भ की गयी ताजगी और भाषा की एक विशिष्ट चमक है जो उन्हें समकालीन अन्य गीतकारों से अलग करती है। इन गीतों की जमीन तो वही है क्यात् प्यार और प्रकृति की, पर कवि ने उस जमीन को एक नयी और निजी आभा प्रदान की है।"

आज के बौद्धिक युग में चिन्तन प्रधान साहित्य की प्रधानता तो है ही और इसी मानसिकता तथा युग प्रवृत्ति को देखते हुए केदारनाथ सिंह कृत ये कवितारं युग के यथार्थ से जुड़ी होने के कारण सामाजिक कैना से जुड़ापिना है।

“ जमीन फूट रही है ” : सामाजिक चेतना

“ जमी. बिल्कुल जमी ” (१९६०) के पश्चात् “ जमीन फूट रही है ” कविवर केदार नाथ सिंह की मशहूर लेखनी का मुफल है। प्रस्तुत कविता संग्रह में संगृहीत फौलौरी कविताओं की रचना धर्मिता आधुनिक लोक चेतना, सामाजिक चेतना एवं समाजवाद के प्रति कवि की प्रतिबद्धता घोषित करती है। कवि बाज के उत्कृष्ट मरे माएंगल, अंधाद और पंग विभेद के दो पाटों के बीच फिरी हुई त्रस्त और दलित मानव जाति के विषम जीवन की लोक कुण्ठाओं, अगाधों, यन्त्रणाओं और घुटन के प्रति सकेतन सहानुभूति और खेदना की इबारत लिखता है, जिसका ज्वलन्त दृष्टान्त लोक कवितारं यथा- रौंटी, टमाटर बैचैवाली बुढ़िया, बेल, “बढ़ई और चिड़िया”, जौलों के गुरु में बाबू, नगी पोठ आदि है।

“ जमीन फूट रही है ” की रचनाओं में अगाध के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि कवि का मूलभूत रमानी काव्य व्यक्तित्व बदलती हुई परिस्थितियों में उसकी कमजोरी बनकर नहीं, बल्कि एक ऐसी ताकत बनकर आया है, जिसे तहत वह मनुष्य की अपने चारों ओर की दुनिया में मजबूत दिलचस्पी, वस्तुओं में रहने- बगने की गहन रसिकता और ऐन्द्रिय खेदना के मरुप्र प्रयोग के रास्ते निकाल लेता है। प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में कवि ने छी ऐन्द्रिकता के गहरे वस्तुओं और प्रकृति से साधारण मनुष्यों के सम्बन्धों को खाना अधिक चमकदार और कमफास्ट से मरा हुआ गिनाया कि बहुतों को यह महसूस हुआ कि केदारनाथ सिंह

राजमर्गों के परिचित सँसार के यथार्थ को कम, उसके विस्मय को अधिक
रूपायित करते हैं।

“ जमीन फूट रही है ” ग्रंथ की “ रौटी ”
शीर्षक रचना में कवि ने रौटी से जुड़ी उस व्यापक मूल का ऐसा प्रतीका-
त्मक परन्तु गंभीर चित्रण किया है, जो बाज के युग में दरिद्रता ग्रस्त उस
विशाल सर्वहारा समाज की दैनिक जीवन-गाथा है जो दौ चून पेट भरने के
लिए अपना हाट - मांस गन्नाकर मेहनत की मलीब अपने कंधे पर ढो रहा
है और उस बोझ से कमरा छोड़ रौटी को बोर ऐसे देख रहा है जैसे-
वह अस्पर्श आकाश का गोल पीताम चन्द्रमा हो। बाज का सदैव ज्वलन्त
सामाजिक प्रश्न विश्व को साथ प्रतिष्ठित जनसंख्या के सामने दौ वक्त रौटी
का स्वाद है और छगी सामाजिक चेतना को कवि ने रौटी शीर्षक कविता
में दर्शित किया है :

“ बाप विश्वास करें
मैं कविता नहीं कर रहा
मिर्फ बाज की बोर इशारा कर रहा हूँ
वह फूट रही है
बोर बाप देखो- यह मूल के बारे में
बाज का वयान है
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है
बाप देखो
दीवारें धीरे धीरे
स्वाद में बदल रही हैं। ” १

“ रौटी ” शीर्षक कविता में रौटी को वह
 नै दुनिया की सर्वाधिक वाञ्छनीय वस्तु कहा है । हर बार जब वह उठी
 बाग में निकलती हुए देखता है, उसे लगता है उसने उसका शिकार किया है
 हर बार वह उसे पहले से ज्यादा स्वादिष्ट लगी है । पहले से ज्यादा गोल
 बाँर सूबसूरत । यह रौटी के लिए बादमी के शाश्वत संघर्ष की अभिव्यक्ति
 है जो सामाजिक कौना का एक प्रमुख घटक है -

“ मैं उसका शिकार किया है
 मुझे हर बार ऐसा ही लगता है
 जब मैं उसे बाग में निकलती हुए देखता हूँ ।

० ० ०

मैं जब भी उसे तोड़ता हूँ
 मुझे हर बार वह पहले से ज्यादा स्वादिष्ट लगी है
 पहले से ज्यादा गोल
 बाँर सूबसूरत
 पहले से ज्यादा मुँह बाँर फकी हुई । ” १

“ बेल ” शीर्षक कविता में बेल उस
 मजबूरी के बाध्य बादमी का प्रतीक है, जो दूसरों की हज्जा से चलता ही
 अपने जीवन का दृष्ट समझता है :

“ वह चल रहा है
 बाँर गिरफ्तार स्क फाड़ण्डी उसे याद है
 जो उसकी पूँछ की तरह
 उसे हाँक लिये जा रही है

० ०

वह एक ऐसा जानवर है जो दिन भर
 भूँ के बारे में लीकता है
 रात भर
 हँस्वर के बारे में

० ०

कबानक उसी चरागाहों को याद आती है
 वह पूँछ उठाता है
 ज़ोर बस्ती के हल्की-सी चक्कर लगाने के बाद
 पाता है- वह ठीक अपने हल के
 लफ्फे लगा है । १

प्रस्तुत 'बैल' शीर्षक रचना यथार्थपरक
 तथा मनोविज्ञान के प्लट का सम्मिश्रण होने के कारण समाज में नयी चेतना
 भरते कीक नामका रखती है ।

कवि की 'जाड़ों के गुरु' में बालू 'शीर्षक'
 कविता भी 'बैल' शीर्षक कविता के समानान्तर है । 'बालू' शीर्षक
 रचना में बालू भी मृत्तिका बन जाता है । कविता को पढ़कर ऐसा लगता है
 जैसे बालू नहीं कोई बादमी बिक रहा है -

'वह जमीन से निकलता है ज़ोर सीधे
 बाजार में चला जाता है

० ०

वह बाजार में ले आता है बाग
 ज़ोर बाजार जब सुलाने लगता है
 वह ज़ोरों के अन्दर उड़तना गुरु कर देता है

हर चाकू पर गिरने के लिए तत्पर
हर नमक में फुलने के लिए तैयार । १

कविवर गिंद ने प्रसृत गंधर्व की लोक रच-
नाओं में मनोवैज्ञानिक धरातल पर यथार्थवादी केना का जिस प्रकार चित्रण
किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है तथा इसी कारण उन्हें बनेय प्रयोगवादी कविता
के जनक, द्वारा प्रशस्ति प्राप्त हुई । कविता 'मंदान में बच्चे' वाल
मनोविज्ञान की ऐसी यथार्थ व्याख्या करती है कि पंक्तियों में बाल गुरुम
झींटा, बालमुक्क्य एवं झींड़ा में व्यसधान प्रस्तुत होने से उत्पन्न बाझीस का
वर्ति स्वामाधिक चित्रण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

गैद कहाँ है- स्क ने पूरा
दूधरे ने दूध की बोर झारा किया
तीगरे ने काड़ी की बोर
मैं देखा वे धीरे- धीरे
दूध से काड़ी की बोर बढ़ रहे हैं
काड़ी से शहर की बोर
उनसे मुझे तने हुए थे
बासिर गैद- गैद कहाँ है
वे पिस्ता रहे थे
बोर मुझे दुस हुआ
महान वाश्चर्य कि मैं वहाँ खड़ा था
बोर वे मुझे नहीं देस रहे थे । २

१- केदारनाथ गिंद- जालों के गुरु में बाल - जमीन फल रही है - पृ० ५७-५८

२- .. - मंदान में बच्चे - जमीन फल रही है - पृ० ८२

आधुनिक युग में चारों ओर जगन्तोष,
जगन्ति तथा जातक की स्थिति व्याप्त है। जातक की स्थिति में चारों
ओर चुप्पी व्याप्त है। मानव दिक्कर्त्ताव्यविमूढ़ता की स्थिति में अपने
को पा रहा है। ऐसी स्थिति में सम्प्रगति की प्रवृत्ति का स्थित सामाजिक
केतना है अमूर्ताणित कविता 'हमलावर' की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट
रूप से मिलता है :

“ वे फिर आ रहे हैं -----

फार यह सारा शहर चुप क्यों है ?

कौन पत्ता कहीं छिड़ता क्यों नहीं ?

कौन आदमी किसी को आवाज क्यों नहीं देता

इस शहर में ?

क्या अपनी भाषा की सारी श्रियाएँ

हमने छगलिर ध्वस्त कर दी हैं

कि जब वे आयेगी

तो उनकी बातचीत करने में

बाधनी होगी ? ” १

“ जमीन फल रही है ” रचना संग्रह की रकार
मानव नियति का तीव्र सन्तापकार करती है। अमानवीय दबाव का
सहज विरोध करना कवि को बखूबी आता है। वर्तमान समय की सामाजिक
तथा राजनैतिक विरगंतियों का सहज तथा स्वाभाविक चित्रण इस संग्रह की
रचनाओं में सफलतापूर्वक किया गया है। कविवर सिंह ने सदैव दृष्टि है

१- देवार्नाथ सिंह- हमलावर - जमीन फल रही है पृ० ८३-८४

चीजों को नये दार से गुजरते देखा है :

“ मैं बहस गुरु तो कर
पर चीजें एक ऐसी दार से गुजर रही हैं
कि सामने की मेज को
सीधे मेज कहना
उसी वहाँ से उठाकर
ज्ज्ञात वपराधियों के बीच में रख देना है । ” १

इसी प्रकार रचना ' प्रतीक्षा के विरुद्ध
कुछ पंक्तियाँ ' वाधुनिक जीवन के दैनिक श्रिया कलाप को पृष्ठभूमि पर
खुलवा संस्कृति का आलेख है जिसे कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में उजागर
किया है :

“ पर कहाँ से गुरु होता है बादमी का दिन ?
कहाँ है वह लकीर जहाँ तुम उंगली रख दो
बौर कहो- यह है- यह है मेरा दिन
पहले तुम्हें तय करना होगा
बाज कुछ है या बृहस्पति
सात है या अत्ताईस

० ० ०
कुछ चीजें हैं- जैसे साबुन का यह डिब्बा
जिस्के बारे में तुम्हारी चुप्पी
सिर्फ उन ताइतों को ताम पहुँचाती है

जो तुम्हें तुम्हारे ताँलियों के विरुद्ध
इस्तेमाल करना चाहती है
उठी उठी
गौर दरवाजा खोल दो । " १

कवि ने अत्यन्त अल्पवृत्त मात्र है तथा शुद्ध
आत्म तथा आसक्ति है आधुनिक मानव विशेष कर नगर- निवासी
लोगों की जिन्दगी के दैनिक सुपरिचित पृष्ठ ज्यों के त्यों सामने खोल कर
रहे हैं जो कथन में बेम्बाद स्व निर्लिप्त मते ही लों लेकिन कथ्य में अत्यन्त
प्रभावी, सार्थक और शक्तिशाली हैं । कविवर केदार नाथ सिंह ने निर्लिप्त
होकर लिखा है । इसीलिए उनकी अनुभूति सच्ची और सार्थक है ।

कविता शीर्षक " दिशा " बहुत ही मामूली
ढंग है बाल मनोविज्ञान का एक अत्यन्त सुभावना अध्याय हमारे सम्मुख रखती
है । इस अध्याय में यह सूचित है कि बच्चा अपने किसी कार्य में अपना किसी
झीड़ा में यदि व्यस्त हो तो सारा समय उसके लिए उसी कार्य या झीड़ा
में केन्द्रीकृत हो जाता है । यह समय को बंद में देखने की क्रिया है, विराट्
को सूक्ष्म में देखने का बाल सुलभ चमत्कार भी -

हिमालय किधर है
मैं उठा बच्चे से पूरा जो स्कूल के बाहर
फाग उड़ा रहा था

उधर-उधर- उगने कहा

१- केदार नाथ सिंह - प्रतीक्षा के विरुद्ध कुछ पंक्तियाँ (जमीन फर
रही है) पृ० १६-२०

झिझर उम्दी फाग मागी जा रही थी
 में स्वीकार क'
 मेरी पहली बार जाना
 हिमालय झिझर है ? ** १

संभवतः इस कविता के सम्मानान्तर विशेषकर बच्चे की स्फूर्ति ज्ञानशीलता
 बीजों के रोमांटिक कवि विलियम बटुवर्थ को इन पंक्तियों में दृष्टिगोचर
 होती है -

कवि केदार नाथ सिंह अपनी रचनाओं में
 विशाल विचार को व्याख्यायित करने के लिए सबसे पहले उसकी प्राकृतिक
 पृष्ठभूमि को गहराई से वर्णित करते हैं और यह सब कुछ इस प्रकार करते
 हैं जैसा कि सिद्धहस्त उपन्यासकार किसी घटना विशेष के मायनात्मक प्रभाव
 को गढ़ा करने के लिए उस घटना के चारों ओर वातावरण और परिवेश
 का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक और जीवन्त करता है। उदाहरण के
 लिए कविता शीर्षक 'बाधी रात' में कवि ने झारे-झारे में नगर
 निर्मम और दूर मानव सम्यक्ता में उपेक्षा और अकर्मण्यता के शिकार व्य-
 क्तिगणों की अकाल मृत्यु की बात निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हुई है -

ठीक उसी समय
 रात की काले बरगों को उतारना शुरू करती है
 गली में सुनाई पड़ती है

१- केदार नाथ सिंह- दिशा - जमीन फल रही है पृ० ३६

मुहल्ले के जाखिरी बादमी के लौटने की बाबाज
 ठीक छगी समय शहर के सारे कुत्ते
 बचानक भूकना शुरू कर देते हैं
 बाँर नदी पर अपने लगती हैं
 मेरे शहर की सक्की सच्ची बाँर दहला देने वाली कविता
 ठीक छगी समय एक घण्टा बजता है
 बाँर शहर के फिरो एक नियम के तहत
 बरफालों में रौनी
 बाँर मंच पर अभिनेता दम तोड़ देते हैं । " १

'बढ़ें बाँर चिड़िया' शीर्षक कविता में
 लकड़ी एक स्तर पर एक व्यंग्य का शक्ति हो जाती है जिम्में चिड़िया
 का दाना गायब हो जाता है। यह विशेष रूप से विचारणीय है कि
 प्रसूत गंधर्व की रचनाओं में 'चिड़िया' बाँर 'माँ' जैसी संज्ञाओं तथा
 'चीखना' बाँर 'फटना' जैसी क्रियाओं का प्रायः अधिक प्रयोग हुआ
 है। 'चिड़िया' बाँर 'माँ' संज्ञा तथा 'चीखना' क्रिया के द्वारा
 कवि ने बाज की दूर यातनापूर्ण स्थिति को जितनी तीव्रता से व्यक्त किया
 है उतनी तीव्रता से शायद ही किसी दूसरी संज्ञा बाँर क्रिया से व्यक्त कर
 पाता -

'यह माँ की बाबाज है- मैं कहा
 चक्को के चन्दर माँ थी।
 पत्थरों को रग, बाँर जाटे को नंद से
 धीरे धीरे झ रही थी
 माँ की बाबाज।

सिर्फ चक्की चक्की रही
 और माँ की बाबाज जाती रही
 रात भर

० ० ०
 ० ० ०

दाना बाहर नहीं था
 छालिए लकड़ी के अन्दर जरूर कहीं होगा
 यह चिड़िया का खाल था
 वह चोर रहा था
 और चिड़िया उस लकड़ी के अन्दर
 कहीं थी
 और चीख रही थी । " १

“ चिड़िया ” और “ माँ ” केवल गीत नहीं
 हैं बाकायदा भी हैं, स्वप्न भी हैं- मुक्ति के लाव के । इस बाकायदा
 और स्वप्न को “ माँकी का फूल ” शीर्षक कविता में देखा जा सकता
 है जिनमें माँकी का फूल है - फूल का फूल न रह कर मनुष्य की बाका-
 यदाओं और उसके सपनों का प्रतीक बन जाता है -

“ मैं पहली बार
 स्कूल में लौटते हुए
 उसकी लाल- लाल ऊँची मेहराबें देखी थी

१- केदार नाथ सिंह- वह और चिड़िया ” पृ० ४९

यह सर्दियों के गुरु के दिन थे
जब पूरव के वाष्मान में
गारुणों के फुण्ड की तरह छैने फगारे हुए
धीरे-धीरे उड़ता है माफकी का पुल

० ० ०

मैं जानता हूँ, मेरी वस्ती के लोगों के लिए
यह कितना बड़ा वाष्मान है
कि वहाँ पूरव के वाष्मान में
हर बादमी है वचन के बहुत पहले से
चुप चाप टंगा है माफकी का पुल । ** १

जहाँ माफकी का पुल कवि के स्वप्नों का
प्रतीक बन जाता है वहीविह प्रतीक वैयक्तिकता की गीमा रेखा को पार
कर सामाजिकता की ओर प्रयाण करता है क्योंकि माफकी का पुल उस
पौत्र की जनता के स्वप्न का साकार रूप है। वैयक्तिक संवेदन के साथ साथ
हम रचना में सामाजिकता भी ध्वनित होते हैं।

** कैदारनाथ गिह की कविताओं में सामा-
जिक तथा वैयक्तिक दोनों धूमियों की गीमा रेखा तक स्वीदना का प्रसार
हुआ है। "बादल जो", "जल छंगी", "दीपदान", "नये वर्ण"
के प्रति "शोर्णक कविताओं में अभिव्यक्ति की नयी भूमिकाओं के साथ २
स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का इसी कविताओं में दीप्त पड़ती है। इसकी कवि-

१- कैदार नाथ गिह- माफकीका पुल (जमीन पर रही है) पृ० ६०-६३

ताजों में लोक जीवन की ताजगी एवं प्रगतितात्मकता के माध्यम से कवि-केतना चित्रित हुई हैं। विम्बों और प्रतीकों से तारा से अभिव्यंजना को संश्लेष रूप देते हैं। इस प्रकार लोक केतना, प्रगतितात्मकता, विम्ब-विधान, एवं प्रतीक योजना एवं कथ्य में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता के समन्वय की केतना के फलस्वरूप कवि का रचना एकार नवस्यन्दतावादी केतना से भी जुड़ता है।^१

केदारनाथ सिंह की कविता दुनिया किन चोखों से निर्मिता है ? इसका फल उनकी 'सूर्य' शीर्षक कविता से नात होता है। उनकी कविता की दुनिया में रोटी और नमक है, भूखा आदमी है, फिता की चाय के लिए नुस्का की हूटान तक दूध खरीदने के लिए जाने वाला बच्चा है, तम्बाकू के सेरा हैं और छन्दहार हैं। यह न आधुनिक शहरों की दुनिया है, न सुदूर गांवों की। यह वह दुनिया है जो शहर और गांव दोनों के मेल से बनी है। कविवर सिंह इसे 'मेरी बस्ती' कह कर पुकारते हैं। परन्तु सच्चे अर्थों में यह कस्बे की दुनिया है। कवि को इस दुनिया के लोगों से प्रेम है तथा उनके कष्टों के प्रति कवि के हृदय में उत्पीड़न है, दुःख है। कविवर सिंह लोगों की मुक्ति के लिए कविता लिखते रहते हैं। उनकी कविताओं में वामपंथियों को पिस्तौल या बम का धमाका न छोड़कर शब्द और आनमी की टाँकर का धमाका है, जिसका सम्बन्ध गोली बारूद से न छोड़कर कविता के प्रभाव से है जिसे बहुत ही संश्लेष ढंग से कविवर सिंह ने व्यक्त किया है।

केदारनाथ सिंह की प्रस्तुत ग्रंथ की लोक कवितारं ऐसी है जितनी स्पष्ट होता है कि वे कुर नये सामाजिक-आर्थिक मूल्यों को स्वीकार कर ही कविता लिखने वाले कवि नहीं हैं, बल्कि मूलतः वे कोमल मानवीय पीढ़नाओं के कवि हैं और उनके प्रसार के लिए ही व्यवस्था

१- डा० जय सिंह- आधुनिक हिन्दी कविता में नव स्यन्दतावाद ,

पटना विश्वि० की टी०एल्लि उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध पृ० ३५३

में परिवर्तन के पक्षधर हैं।

कैदारनाथ गिंह द्वारा प्रयुक्त शब्दावली हमारी अत्यन्त जानी- पहचानी है और उसमें हमारे दैनंदिन उपयोग की हमारे अनुभूत सँगार की, हमारे दृष्टि फल की, हमारी कल्पना और अनुमान की वे सम्स्त वस्तुएँ सम्मिलित हैं जिनके नाम सभी के हाँठों पर हैं। तथापि अत्यन्त सरल भाषा में लिखी हुई उनकी कविताओं का कथ्य गूढ़ मौखिकानिक प्रक्रियाओं के बीच में से होता हुआ मात्र विश पाठक तक ही स्पष्ट हो पाता है और छगीलिय उनकी कविता भाषा उपादान की दृष्टि से स्पष्ट और सरल होते हुए भी चितार की गहिरा और प्रक्रियाओं की क्लिष्टता के कारण आम पाठक के गले साफ़ नहों उतरेंगी। यथा-

“ कभी अपनी जहल सौते जा रहे हैं
जबकि चाकू ठोरे सड़िया और स्लेट
ये महज शब्द नहों
जमीन के अन्दर बिछी सुरंगें हैं
जिनसे होकर अपने घर के पास तक
पहुँचा जा सकता है। ” १

प्रस्तुत संग्रह की रचना शीर्षक “ टमाटर बेने वाली बुढ़िया ” एक ऐसी उत्कृष्ट रचना है जो एक एकीतिक भाषा में बच्चों के प्रति माँ की ममता और मोह का एक ऐसा वातावरणमय चित्र उप-रिक्त करती है, जिसे मात्र गूँ की अनुभूति के समान समझा जा सकता है, व्यक्त नहीं किया जा सकता। माता अपनी हुन्दर खँ दर्शनीय शिशु को लोगों की नजर से बचाने के लिए जिस प्रकार अपने अँबल में उपा लेती है, क्योंकि वह

वफ़े बच्चे की गलज टौना ग्राह्यता को मली भाँति समझती है उसी प्रकार बुढ़िया जो टमाटर डलिया में रखकर बैच रही है वफ़े सुसं टमाटरों का वन्तारंग और बहिरंग मली भाँति पहचानती है । वह वफ़े टमाटरों को बेचने को अवश्य उत्तुक है, परन्तु उनकी कैदारी सलन नहीं कर पा रही है । उसका वाचरण और व्यवहार कवि ने निम्न पंक्तियों में चित्रित करके सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी भावात्मन की पामता का परिचय देता है -

“ वह एक भूरे टमाटर को धीरे से उठाती है
 और हरी पत्तियों के नीचे
 छिपा देती है- माँ की तरह -----
 टौकरी में टमाटर है
 पर टमाटरों के नीचे क्या है ?
 क्या है- क्या है हरी पत्तियों के नीचे
 मैं बुढ़िया मैं पूछना चाहता हूँ
 बुढ़िया चुप है
 एक दम माँ की तरह । ” १

इस प्रकार वाज के वादिक युग में किंतु प्रधान साहित्य की प्रधानता तो है ही और इसी मानसिकता तथा युग - प्रवृत्ति को देखते हुए केदार नाथ सिंह कृष्ण खन्नार युग के यथार्थ से जुड़ी हुई है । इसलिए सामाजिक केना को स्वरित करने में सक्षम है ।

“ सामाजिक केना से आधुनिक कवि
 सुम्न, त्रिलोक, नागार्जुन, केदार नाथ खन्नाल , केदार नाथ सिंह आदि

१- केदार नाथ सिंह - टमाटर बेचने वाली बुढ़िया (जमीन फल रही है)

की कविताओं में यह वैयक्तिक आचारिकता व विद्रोही भाव नव स्वच्छन्दता-वादी चेतना से युक्त है। इसके अतिरिक्त संस्कृति, लोक-संस्कृति, लोक-जीवन एवं लोक परिवेश की अभिव्यक्ति इतनी बारीकी से करते हैं, जिसे लगता है कि वे आन्तरिकता को बाह्यलिखता से पाग रहे हैं।^१ ”

इस प्रकार केदार नाथ सिंह की कविता वाज की वास्तविकता, व्यवस्था की कूटता, एमफाता, चुप्पी, जन-साधारण की पीड़ा और उसके संघर्ष का चित्रण बहुत गतिक्रमिक ढंग से करती है। वाज की कविता में जो आक्रोश, विद्रोह और आक्रामकता की मुद्रा है वह केदार नाथ सिंह की रचनाओं में नहीं दृष्टिगोचर होती। उनकी कविताओं में मनुष्य तथा विराट् प्रकृति के प्रति एक गहरी आत्मीयता है।

१- डा० अजय सिंह- नवस्वच्छन्दतावाद पृ० ६१

‘यहाँ से देखो’ : में सामाजिक केतना

‘यहाँ से देखो’ कविवर केदार नाथ सिंह का सर्वाधिक, सशक्त, प्रांढ़ तथा ‘सामाजिक केतना’ से जीत-प्रोत रचना संग्रह है, जिन्होंने रचनाकार को विद्वत् जगत् में प्रसिद्ध तथा लोक-प्रिय बनाया है।

हमारे ऋषियों तथा मुनियों द्वारा प्रणीत पुराण एवं शास्त्र इस बात को बताते हैं कि हमारी दृष्टि चारों ओर तास योनियों से युक्त है। केतनाशील प्राणी क्या कि मनुष्य समस्त योनियों में देखे हैं। ऐसी ही भाव कविवर सिंह ने अपनी रचना ‘संयोग’ में मानव के विषय में प्रस्तुत किये हैं। इनका विचार है कि मनुष्य की पहचान जीवन के किसी भी क्षेत्र में उसके सामाजिक कार्यों से परिलक्षित होती है। स्थल कोई भी हो मनुष्य की मानवीय केतना तब तक उसके साथ रहती है। व्यक्ति राजमार्ग पर शान्त चित्त सदा ही या तब से लोह पथ पर गमन करती हुए लोहपथ गाँमिणी में बंठा हो उसका व्यवहार मानवीय ही होता है। मानव के सम्बन्ध में जो ज्ञान हमारी पुस्तकों में प्राप्त हुआ है या जिसके विषय में विद्वान् व्यक्तियों ने कहा है वह मानव अपनी सामाजिक केतना के कारण ही पशु, पक्षी या वृक्षों से भिन्न है। मानव जब किसी भी जीव को दुःख से ग्रसित देखता है तो स्वाभाविक रूप से उसकी आत्मा द्रवित हो उठती है और उसके नेत्र आँसुओं से आर्पित हो जाते हैं जबकि निष्प्राण तथा ज्वेतन वनस्पतियों में यह भाव विद्यमान नहीं होता। कविवर सिंह ने ‘संयोग’ रचना के माध्यम से इन भावों का शब्द चित्र निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है -

मैं एक दिन मड़क पर
 एक बादमी को देखा
 जो मुझे लगा मैं ही जानता हूँ
 गलत- मेरे मा ने कहा
 तुम इसे नहीं जानते
 जानता हूँ- मैं कहा
 यह वही- वही बादमी है
 जो मुझे ट्रेन में मिला था
 एकदम- गलत - मेरे मा ने फिर कहा
 यह वह नहीं है
 है
 नहीं है -
 मैं दूर तक गीकता रहा
 कि तभी मुझे दीखा
 उसके घूम मरे चेहरे पर वह किन्ना सा द्रव
 जो बादमी को पहलें से अलग करता है
 ० ० ०
 ० ० ०
 जिनके बारे में किताबों में
 मैं कहों कुछ नहीं पढ़ा है । १

कवि केदार नाथ गिह की "घोषणा"
 रक्ता की आधारभूमि पूर्णरूपेण मनोवैज्ञानिक है । "घोषणा" रचना
 कवि के उस विचार को अभिव्यक्त करती है जिसमें मनोवैज्ञानिकवाद के

संस्थापक 'फ्रायड' का दृष्टिकोण स्पष्टरूपेण फलकता है, क्योंकि
 उन्होंने जीवन के ध्रुवों के सम्बन्ध में यथार्थ चित्रण किया है। जहाँ एक
 ओर हम कैन में सक्रिय होते हैं वहीं अकैन में निष्क्रिय होते हैं। जहाँ
 कैन में मुक्त हैं वहीं अकैन में मर्त। जहाँ कैन घृणा है मरत हुआ है
 वहीं आज भी कवि के हृदय में अपने जन जीवन है प्यार भी है। जीवन
 में दुन्दुबों का संयम किसी न किसी माध्यम है वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों
 ही पहलुओं को स्पर्श करता है। 'घोषणा' कविता में कवि ने इन्हीं
 विचारों को प्रस्तुत किया है -

‘ और अन्त में
 मैं घोषित करता हूँ
 कि जो स्वस्थ है
 वह सबसे अधिक बीमार है
 जो हँसता है
 उसे सहानुभूति की जरूरत है
 जो चल रहा है
 वह सड़ा है
 जो बोल रहा है
 वह कहीं न कहीं चुप है

मैं घोषित करता हूँ
 कि जो मच है
 वह सच नहीं है
 जो जानता है
 उस तक सबर अभी पहुँची ही नहीं

मैं घोषित करता हूँ
 कि इस घोषण युद्ध में
 जहाँ बहुत कुछ नष्ट हो चुका है
 वहाँ अब भी - अब भी
 प्यार है । * १

कवि श्रेष्ठ सिंह जीवन के प्रति आशा-
 वान हैं । पण्ड तथा नष्टप्राय को देखकर भी केदार नाथ सिंह को लगता
 है कि जीवन रहेगा तथा पूर्ण होगी । वर्तमान समय की विषम परि-
 स्थितियों में प्रत्येक मनुष्य चिन्ताओं तथा क्लृप्ताओं से ग्रस्त है । उसे अपने
 जीवन के बारे में कुछ खबर नहीं है । वह दाँढ़ रहा है, गाँगा रहा है , परन्तु
 उस दाँढ़ धूप की विभीषिका ने उसके दम लगभग तोड़ दिया है । वह अस-
 हाय होकर सुप्ताप निराश जीवन को जीक या डौला हुआ हत्या या आत्म
 हत्या की कुवेष्टा कर रहा है । ऐसी विकराल समय में कवि एक आशा की
 प्रसार रश्मि लेकर उसके बुके हुए जीवन में आलोक प्रफुटित करने का मान-
 वीय प्रयास करता है । जीवन की नश्वरता में ही यथार्थ का भाव दिया
 हुआ है । मनुष्य के किये हुए कार्य तथा उसके दिये हुए उपदेश जो कि अनहित
 को दिशा देते हैं कभी भी समाप्त नहीं होते । बाहे कलने वाले का जीवन
 कितना भी आणित क्यों न हो -

* मुझे विश्वास है
 यह पूर्ण होगी
 यदि बार कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में

यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में
 रहते हैं कीमत्
 जैसे दाने में रह लेता है फुल
 यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरी बन्दर
 यदि बाँर कहीं नहीं तो मेरी जबान
 बाँर मेरी नखरता में
 यह रहेगी
 बाँर एक गुबह में उठेगा
 मैं उठेगा पृथ्वी सपेता
 जल बाँर कच्छप- सपेता मैं उठेगा
 मैं उठेगा बाँर चल दूँगा उससे मिलने
 जिनसे वादा है
 कि मिलूँगा । १

नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर केदार
 नाथ सिंह ने ' जनरल का काम ' नामक रचना में वर्णनों की भूमि पर
 जो कि सामाजिक चेतना का प्राण है, ग्रामीण कृषक की दयनीय दशा
 का चित्रण किया है । स्वतन्त्रता के चार दशक व्यतीत हो जाने के बावजूद
 भी भारतीय कृषक की स्थिति में वह सुधार नहीं हो सका है जो अपेक्षित
 था , क्योंकि स्वतन्त्रता को कल्पना जिस रूप में की गयी थी उससे भारतीय
 कृषक तथा श्रमिक दोनों ही बर्बाद हो चुके हैं जैसाकि कविवर सिंह ने
 इस रचना में चित्रित किया है । मेघ मालाओं की वर्णना है पृथ्वी गीली
 हो चुकी है परन्तु कृषक के पास भूमि को जीतने हेतु उन्नत साधन आज भी

उपलब्ध नहीं है :

“ वह एक अद्भुत दृश्य था
 मेह बरस कर सुत चुका था
 सैत चुतने को तैयार थे
 एक टूटा हुआ छल मेह पर पड़ा था
 बार एक चिड़िया बार- बार- बार बार
 उसे अपनी चौंच से
 उठाने की कोशिश कर रही थी । ” १

वार्षिक स्वतन्त्रता पर तीसरा प्रहार
 करते हुए कवि ने “ जनक्ति का काम ” कविता में यह भी स्पष्ट किया
 है कि शक्ति तथा मजदूरों की समस्या के सम्बन्ध में अपनी वाचा उठाता
 है तो उसे जनता का परम हितोन्नी नहीं बल्कि विरोधी समझा जाता है-

“ मैं देता
 बार मैं लौट जाता
 क्योंकि तुम्हें लगता मेरा वहाँ होना
 जन हित के उस काम में
 बसल देना होगा । ” २

कवि ने “ मजदूरों की लड़ाई ” कविता
 लिखकर इस बात पर बल दिया है कि बिना भी सामाजिक परिवर्तन के लिए
 यह वास्तविक है कि एक नायक के रूप में समाज को नयी दिशा देने के लिए

१- केदार नाथ गिह- यहाँ है देली पृ० ४८

२- वही , पृ० ४८

हम अपने चरित्र को उन्नत करें उसमें केवल सौख्ये वादश व्याप्त न हों ,
 व्यक्ति जीवन के यथार्थ मूल्यों का बोध हो तथा जीवन के यथार्थ मूल्यों का
 बोध ही सामाजिक केंद्र का मूलधार है ।

“ सुबह हुई
 और उम्मे गीचा
 दुनिया बदलने से पहले
 मुझे बदल डालनी चाहिए अपनी चादर
 जो कि मैली हो गयी है । ” १

कवि धीरे धीरे जो जीवन का स्तुत
 बोध है । कवि ने बुनने का समय शोणिक कविता में युवा केंद्र का ज्ञान
 का सफल स्व स्तुत प्रयास किया है तथा यही सामाजिक केंद्र का आधार-
 भूमि है । विश्व के अन्य कौनों में सभी लोग जाग्रत अवस्था में हैं तथा अपने
 जीवन के विभिन्न आयामों में कार्य रत हैं । प्रत्येक स्थिति चाहे सुख हो
 या दुःख हो, उम्मे खीरा हो या प्रकाश हो सभी में एक सूत्र की तरह जीवन
 को बांधने का प्रयास कर रहे हैं । उनका पथ प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा
 है लेकिन तुम अब भी अज्ञान अवस्था में हो क्योंकि तुम्हारी दिशाहीनता
 तुम्हें अपने करज्य तथा दायित्व से अलग हटाकर टूटे हुए भागों में उत्पन्न
 रही है-

“ उठो मेरे गीये हुए धागो
 उठो
 उठो कि दर्जी की मशीन चलने लगी है
 उठो कि धीबो पहुँचा गया है घाट पर

उठी कि नंग घटा घच्चे
जा रहे हैं स्कूल
उठी मेरी सुबह के धागी
बाँर मेरी शाम के धागी उठी

० ०
उठी कि कहीं कुछ गलत हो गया है
उठी कि इस दुनिया का सारा कपड़ा
फिर मैं बुनना होगा
उठी मेरे टूटे हुए धागी
बाँर मेरे उलझे हुए धागी उठी
उठी
कि बुनने का समय हो रहा है । १

केदार नाथ सिंह ने 'ऊँचाई' शीर्षक रचना में जीवन के उस कार्पनिक चार्ज के सम्बन्ध में गहरी विचारों को प्रकट करके हुए एक बात पर बल दिया है कि मानव जीवन एतापित कैसा है साथ मिलकर कामें करो हुए ही उसी उच्च जादगी को प्राप्त कर सकता है, एसाप मैं जसम उनके वैभव का कोई जगितत्व नहीं है । यह कैल जलै जह की गनुष्ट करने का नायम हो सकता है न कि अन्य जीवन को जात्म-केतना का । इस तरह इस कविता में सामाजिक जादगी, सहयोग, स्पर्धा तथा समा-वीजन का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण हुआ है । वयपि कविता लौटी है किन्तु सामाजिक भावों में बोल प्रीत है :

मेँ वहाँ पहुँचा
बाँर डर गया

मेरे शहर के लोगो
 यह किताब भयानक है
 कि शहर की सारी गोदियाँ मिलकर
 जिस महान ऊँचाई तक जाती है
 वहाँ कौन नहीं रहता । " १

कवि की 'टूटा हुआ टुक' कुछ इस
 प्रकार की रचना है जिसमें वस्तु की भौतिक सत्ता के काम चलाऊ व्यर्थ को
 पहली दो पंक्तियों में ही बहुत पीछे झेड़ दिया गया है । यहाँ माणसा
 एक गजब का व्यवहार करती है । सम्पूर्ण साधारण चीजों की हरकतों कि
 प्रकार एक बड़े दृश्य फलक में अपना छिस्ता मांगती है । यथा-

" मैं देख रहा हूँ
 एक लोटी-सी तार
 रटीयरिंग की और बढ़ रही है
 एक जरा सी फत्तो
 मोँप के पास लुकी है
 जैसे उसे बजाना चाहते हो
 एक बहुत महीन और बेताबाज सी टॉक-पीट
 लगातार जारी है समूचे टुक में
 कौन नट लीला जा रहा है
 कौन तार खग जा रहा है
 टूटा हुआ टुक
 पूरी तरह लोप दिया गया है
 बाप के हाथों में । " २

१- देदार नाथ सिंह- यहाँ मैं देखी - पृ० ५६

२- पृ० १३

‘ टूटा हुआ टुक ’ रचना की पद्धति के पश्चात् यह विचार दृढ़ हो जाता है कि जीवन तो हर जगह कवि की कविताओं में होता है, लेकिन जीवन की स्थापना बहुत कम रचनाकार कर पाते हैं। कवि का टूटा हुआ टुक भी पूर्णरूपेण निराश नहीं है। विस्तृत मशीनी वस्तु टूटने के पश्चात् भी अपनी यात्रा के पथ पर गतिमान होने हेतु उभरता है। वनस्पति उसकी मरम्मत करने की तैयार है। कवि की ‘ टूटा हुआ टुक ’ रचना सामाजिक चेतना से लौट प्रोत्त है, जिसमें कवि ने व्यवस्था के दोष पर पाठकों के ध्यान को आकर्षित किया है। अतः, इस रचना में हमारे समय के यथार्थ की कौन-कौन-सी परिचित भंगिमा नहीं है फिर भी चीजों के देखने और जानने के वांछितोद्घरण है भिन्न हो यहाँ एक सार्थक हस्तक्षेप है।

‘काल में गारस’ में सामाजिक चेतना

‘काल में गारस’ की प्रथम रचना ‘मातृभाषा’ है जिसमें कवि ने माधारण से उदाहरण के तौर पर मातृभाषा के महत्त्व की स्वीकारा है। छोटे से जीव चींटियाँ अपने निर्धारित कार्य सम्पन्न करने के बाद अपने निवास गृहों (बिलों) की लॉटती है, कठफोड़ा काष्ठ के निकट जाता है तथा छ्वाँ जहाँ अपनी निर्धारित यात्रा तय करने के बाद अपने विश्राम स्थल (छ्वाँ बूँदे) की ओर लॉट पड़ती है उसी प्रकार कवि को अपने अन्तस् में उठे विचारों की अपनी मातृभाषा में व्यक्त करने में जो सन्तुष्टि होती है वह न शान्त रहने में और न हो विदेशी भाषाओं का बालम्बन धारण करने में। प्रस्तुत रचना में कविवर केदार नाथ सिंह ने यार्थ की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है।

आः प्रस्तुत कविता सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है -

‘जैसे चींटियाँ लॉटती हैं
बिलों में
कठफोड़ा लॉटता है
काठ के पास
वायुयान लॉटती है एक के बाद एक
लात वायुयान में जैसे पगारे हुए
छ्वाँ बूँदे की ओर
वो मेरी भाषा

मैं लाँटता हूँ तुम में
जब चुप रहती- रहती
झकड़ जाती है मेरी जीभ
दुखने लगती है
मेरी आत्मा । " १

प्रस्तुत संग्रह की ' एक लौटा सब कु-
रोध ' शीर्षक कविता लोक चेतना प्रधान है, जिसमें ग्रामीण जंगल को
लाँटने का कुरोध कविवर गिह ने किया है । साथ सामग्री यथा- चावल,
जाटा, दाल, फुडीना आदि बिना मिलावट के और उचित मूल्य पर मात्र
ग्रामीण परिवेश में ही उपलब्ध हो सकती है :

' बाज की शाम
जो बाजार जा रहे हैं
उनके मेरा कुरोध है
एक लौटा- सा कुरोध
क्यों न ऐसा हो कि बाज शाम
हम अपनी धँसे और ठोलचियाँ
रस दें एक तरफ
और सीधे धान को मंजरियों तक चले । " २

बाजार में जाकर न तो कृणक को ही उचित मूल्य उपलब्ध हो पाता है और
न ही ग्राहक की संतुष्टि । बाजार के जमाखोर कृणक को खाते हैं , गस्ता

१- केदार नाथ गिह- काल में सारस पृ० ११

२- वही , पृ० १३

उरीदते हैं तथा उपभोक्ताओं को मन चाहे मूल्य पर विद्रव्य कर मुनाफा कमाते हैं। कविवर गिंह की फीकी दृष्टि बड़ी सफलता के साथ ऐसे स्थान पर पहुँचती है। कवि का कथन है :

‘ उक्ति यही होगी
कि हम गुरु में हों
बामने-सामने
बिना दुभाणिये के
सीधे उस एगन्ध से
बातचीत करें । ’ १

कविवर गिंह का मत है कि बिना मिला-बट का सापान्न हमारे स्वास्थ्य के लिए हितकर रहता। रक्त की विरुद्धता, अच्छी भूख का लगना तथा अच्छे स्वास्थ्य के गहरी नींद का सोना भोजन की शुद्धता पर ही आधारित है। उनका कथन है :

‘ यह रक्त के लिए अच्छा है
अच्छा है भूख के लिए
नींद के लिए । ’ २

इस प्रकार कविवर गिंह का बतुरोध ‘ बाजार न बाये बीच में ’ बड़ा सार्थक, व्यावहारिक तथा यथार्थ की भित्ति पर आधारित होने के कारण सामाजिक जेतना प्रभाव है।

‘ छुल्लू छुल्लू पाँ एक किसान बाप ने बेटे

१- कैदार नाथ गिंह - काल में गारुड पृ० १३

२- पृ० १४

को दिये । शीर्षक कविता बड़ी सहज और अनुभव प्रधान है । वस्तुतः अनुभव का नाम ही शिक्षा है । पिता ने अपने लम्बे जीवन में जो कुछ देखा , समझा तथा परखा है, उसी का अनुभव वह अपने बेटे की प्रस्तुत रचना में कराता है, जिनसे उसका बेटा बिना किसी रुकावट के जीवन की एकता के साथ जितना सके । मनुष्य, पशु, पक्षियों की ही नहीं , पेड़ पत्तों की न गताने की मातृवर्णानिष्ठा का भाव कविवर सिंह के अन्तः में व्याप्त है । वे कहते हैं :

“ चरा फलता
कभी मत्त तौड़ना
जोर जार तौड़ना तो रेंगे
कि फेड़ की चरा भी
न ही पीड़ा । ” १

जीवन में अन्न के महत्त्व की कविवर सिंह स्वीकारते हुए पिता द्वारा पुनः की शिक्षा दिलाते हैं कि दैनिक रोट्टी जो गेहूँ के पाँपे से उपलब्ध होती है, के महत्त्व की हर समय स्मृत रखना तथा गेहूँ के पाँपे के प्रति श्रद्धा से नत मन्तक होना । वे कहते हैं -

“ रात की रोट्टी जब भी तौड़ना
तो पल्ले गिर फुकाकर
गेहूँ के पाँपे की याद कर लेना । ” २

कविवर सिंह की प्रस्तुत रचना का वाक्य

१- कैदार नाथ सिंह - अकाल में गारा पृ० १८

२- “ “ “ “ पृ० १८

है भी सामाजिक ज्ञाना है कुप्रमाणित है कि वे परम्परागत गिद्वान्तों है
हटकर मानवीय धरातल पर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। वह धुवतारे के
बजाय कुत्तों के भूँसने की जावाज पर मरीणा रस्ते पर बल देते हैं -

“ कभी बधैरे में
जार भूल जाना रास्ता
तो धुवतारा पर नहीं
मिर्फ दूर है जाने वाली
कुत्तों के भूँसने को जावाज पर
मरीणा करना । ” ९

“ ज्वाल में गारा ” ग्ग्रह की “ ज्वाल
में द्रुव “ शीर्षक युक्त रचना एक कठिन समय की वास्तवी के अन्तर्गत बेदम
पणे जीवन है प्रति लालसा या वाग्यक्ति की पुनः उपलब्ध कराने के लगातार
संघर्ष का प्रतिकल है। इसे है दुर्भिक्षा की विमोणिका की कविघर गिद्व
एक प्रकार प्रस्तुत करते हैं -

“ भयानक सूखा है
पानी छोड़ कर चले गये हैं
पेड़ों को
बिलों को छोड़ कर चले गये हैं चोटि
चीटियां
देखरी जोर चौकट
फाट नहीं कहाँ दिधर चले गये हैं

घरों को छोड़कर
 मयानक हूँ
 खैरी लड़े हैं
 एक दूसरे का मुँह ताकते हुए । १

हूँ मैं पड़े अकाल में मानवता बाहि-
 बाहि कर उठती हूँ । जीवन एक मार बन जाता है । परन्तु कविवर सिंह
 का दृष्टिकोण वास्तवादी है । जीवन में संघर्ष करते हुए मानव को जीने
 की इच्छा अविनाशित रखती है- मैं उनका बूट विश्वास हूँ । उनका कथन है -

कहते हैं पित्त
 ऐसा अकाल कभी नहीं देता
 ऐसा अकाल कि जसो में
 दूब तक फूलस जाय
 सुना नहीं कभी
 दूब मार मरती नहीं -
 कहते हैं वे
 बार ही बारें हैं चुप । २

दूब की उपस्थिति के रूप में जीवन के प्रति साक्षात् की अभिव्यक्ति कविवर
 सिंह निम्न पंक्तियों में करा रहे हैं -

एक हरी फत्तो
 दूब है
 हाँ- हाँ दूब है -

१- केदार नाथ सिंह - अकाल में मारस पृ० २०

२- वही , पृ० २०

पहचानता हूँ मैं
 बाँट कर यह खबर
 देता हूँ फिटा कौ
 कधारे में भी
 दमक उठता है उनका चेहरा
 है- कभी बहुत कुछ है
 अगर कबी है दूब---
 बुदबुदाते हैं वे । १

वस्तुतः कविता का कथ्य मनोवैज्ञानिक
 होने के कारण सामाजिक चेतना से युक्त है, क्योंकि कवि इस रचना में
 "जिजीविषा" को व्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिक सी०जी० युंग ने भी
 इसी तथ्य पर बल दिया है कि हम सभी जीने के लिए झुंकते हैं या हमारी
 जीने के प्रति आसक्ति है, का: संघर्ष-रत रहते हुए भी जीवित रहते हैं।

"रसोई घर में चाकू" शीर्षक कविता
 सामाजिक चेतना से वस्तुप्राणित है, जिसमें कवि ने रसोई घर के चाकू, जो
 सब्जियाँ काटने का कार्य करता है, की तुलना मजदूर से की है। जिस प्रकार
 सब्जियाँ काटने के बाद चाकू रसोईघर के नंगे फर्श पर पड़ा विराम स्थिति
 में होता है, उसी प्रकार दिन में परिश्रम करके मजदूर बच्चों के वृषा की छाया
 में पृथ्वी पर लेटकर विश्राम करता है। कवि का कथन है -

"एक समय

देर गरी सब्जी काट चुकने के बाद

वह नंगी फर्श पर
चुपचाप पड़ा है
जैसे सटने के बाद
बबूल की शाह में
हस्ताता है मझूर । * १

* दाने * शीर्षक कविता लोक-कैतना से लघुबद्ध है, जिसमें कविवर कैदार नाथ सिंह ने दाने की मण्डी जाने की अनिच्छा पर कल्पित बल दिया है कि बाजार में उनकी महानता मर्यादित होकर मूल्य की परिधि में समाहित रह जाती है । सल्लिखान के रूप में अपनी परिवेश के प्रति वास्तविकता को स्पष्ट करते हुए कैदारनाथ सिंह का कथन है कि एक बार मण्डी में विक्रय के बाद साधान्न देश-विदेश के किसी भी शोर तक भेजे जा सकते हैं, उनके स्वरूप में भी परिवर्तन हो सकता है । जिससे उन को पहचानना भी कठिन हो जाता है । कवि का कथन है -

* नहीं
हम मण्डी नहीं जाएंगे
सल्लिखान * उठते हुए
कहते हैं दाने
जाएंगे तो फिर लौटकर नहीं आएंगे
जाते- जाते
कहते जाते हैं दाने
आर जाते भी

तौ तुम हयें पहचान नहीं बाजीगे
 अपनी अन्तिम चिट्ठी में
 लिख भेजते हैं दाने । १

प्रस्तुत ग्रंथ की " पशु मेला " शीर्षक रचना कविवर सिंह की अपने जन्म स्थान चकिया के निकट बलिया में ददरी नामक मेला, जहाँ कार्तिक मास में पशु मेला लगता है के प्रति व्यक्ति की प्रकट करती है। पशु मेला, बैल, ददरी, दूक, घोंड़े आदि शब्द लोक परिवेश को सुगन्ध है सुगन्धित है। लोक-चेतना प्रधान रचना यथार्थ की भित्ति पर आधारित है। चित्रात्मकता के गुण है रंजित होने के कारण रचना की स्वाभाविकता को निगुणित करती है। लोक चेतना जूझि सामाजिक चेतना का बाह्य बनती है। अतः रचना स्वाभाविक रूपेण सामाजिक चेतना है अनुमानित है। केदार नाथ सिंह का कथन है -

" कार्तिक श्राव -

दूक चले जा रहे हैं
 दूकों में लड़े हैं बैल
 बिकने को जा रहे हैं
 ददरी मेले में

० ०

जूल में पूजा हुआ
 भागा जा रहा है दूक
 दूक की जल्दी है
 मेले में पहुँचने की

टुक पर खड़े हैं बेल
थके हुए, ऊबे हुए
चुपचाप ताकते हुए । १

“ पांच पिल्ले ” कविवर कैदार नाथ सिंह की व्यंग्यात्मक रचना है जो यथार्थवादी होने के कारण सामाजिक केतना के स्वर में स्वरित है । प्रस्तुत रचना में कवि ने व्यवस्था में व्याप्त दोष पर दृष्टिपात करते हुए मानवता के समस्त सुखों की भांति मुंह फेंकते हुए साथ, बेरोजगारी जैसी समस्याओं का सम्यक् चित्रण किया है । कवि का कथन है -

“ दुनिया ने जने पांच पिल्ले
पाँचों स्वस्थ सुन्दर
नरम
फवरी
गदगदे पिल्ले

अब हूरत की बीर मुंह किये
पाँचों तड़े हैं
कुं- कुं करते
चक्ति- हैरान
मानो पूरा रहे हों
फिली, हम वा तौ गये
कद क्या करें
हम दुनिया का ? ” २

१- कैदार नाथ सिंह- अकाल में एकरा पृ० ८०

२- वही , पृ० ८२

निष्कर्षः: "काल में गारस" अन्त-
तन हिन्दी कविता को एक नया आयाम देने का कविवर केदार नाथ सिंह
का सार्थक तथा सफल प्रयास है। प्रस्तुत ग्रंथ का अध्ययन करके यह विश्वास
पार भी दृढ़ हो जाता है कि कविता अपनी जड़ों में फैलती हुई उगी है
प्राप्त ऊर्जा के बल पर वह अपने समय, परिवेश, मानवता के संघर्ष और
प्रकृति में बहुदिशि बिगारती जीने की इच्छा को उचित स्वर देने में सफ-
लता की ऊँचाइयों को छूने में सफल रहती है। प्रस्तुत ग्रंथ में लोक-
केतना में रची- बनी भाषा की ऐन्द्रियता, व्यं ध्वनि को पहचानना उतना
ही स्वाभाविक है, जितना सहज है मान लेना।

कविवर सिंह ने लीपे- लघे जनसधारण
लेखी बोधगम्य भाषा और शैली में अपनी अन्तः ध्वनि को कविता के माध्यम
से पाठकों के हृदयों को उमेलित करने का मौलिक प्रयास किया है। "काल
में गारस" एक कठिन समय की ब्राह्मण के अन्तर्गत मृतप्रायः जिजीविषा को
फिर से प्राप्त और पहले है अधिक प्रभावी बनाने के लगातार संघर्ष का
प्रतिफल है। कविवर केदार नाथ सिंह ने समकालीन यथार्थ को अपनी कविता
के माध्यम से जो स्वर प्रदान किया है वह यथार्थ को फींकी ठूक- ठूक और
खिदना से रिक्त है। अन्तः: डा० सिंह की प्रस्तुत कृति सामाजिक केतना
प्रधान दुर्लभ कृति है। इसमें जीवन को लिपि हुई गहरी सच्चाइयों की फाँदियाँ
देखी जा सकती हैं। उन फाँदियों की मूल केतना जीवन यथार्थ की अभिव्य-
क्ता है।

पंचम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति की प्रत्येक प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति तथा उसके व्यक्तित्व का सर्वतो-मुखी विकास यथा- सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि समाज में रहकर ही सम्भव है। परन्तु इसके साथ ही यह तथ्य भी नहीं नकारा जा सकता कि व्यक्ति मानव समाज की हड्डी है, और प्रत्येक छतई का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। अतः व्यक्तिगत चेतना सामाजिक चेतना का मूलधार है, रीढ़ की हड्डी है।

सामाजिक चेतना का अस्तित्व समाज में मूल-मान व्यक्तियों से परे नहीं होता है। सामाजिक चेतना मनुष्यों के मस्तिष्कों में निश्चित विचारों, दृष्टिकोणों, इच्छाओं और भावनाओं के रूप में रहती है, जो प्रत्येक राष्ट्र विशेष का चरित्र व्यक्त करती हैं। किसी भी राष्ट्र की महानता निर्धारण का पैमाना उस राष्ट्र का चरित्र होता है, जिसका ध्वज स्वर्ण से भी जड़कर है तथा जिसकी शक्ति अक्षुण्णीय तथा अघर्णीय होती है। राष्ट्र का चरित्र उस राष्ट्र की सामाजिक चेतना ही होती है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि किसी व्यक्ति की चेतना का चरित्र व्यक्त करने वाली प्रत्येक वस्तु वर्गीय समान जितों को व्यक्त करने वाले सामाजिक विचारों भावनाओं, इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, प्रयत्नों और दृष्टिकोणों के संघटन

का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि किसी वर्ग या किसी दूसरे सामाजिक संगठन, सामाजिक समूह आदि के सामान्य हितों का प्रतिनिधित्व करती है।

लोगों की सामाजिक चेतना एक समान नहीं हो सकती। सामाजिक चेतना में अनेक प्रकार की प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक घटनाएँ सम्मिलित होती हैं, जिनमें मानवीय भावनाओं, अनुभवों तथा मुद्दों है लेकर सामाजिक जीवन के सारतत्त्व की परिभाषा के सूत्र में बाँधने वाले सिद्धान्तों, सामाजिक विकास की दिशा तथा अन्य प्राकृतिक घटनाएँ सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ प्राकृतिक घटनाएँ मानवीय सामाजिक अस्तित्व की अस्पष्ट रूप में तथा कुछ ठोस तथा पर्याप्त स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित करती हैं। कतिपय प्राकृतिक घटनाएँ लोगों के दैनिक जीवन में स्वयं स्फूर्त ढंग से प्रकट होती हैं, जबकि कुछ दूसरे लोगों के मस्तिष्क में जान बूझ कर मनुष्यों के किसी समूह द्वारा पैदा की जाती हैं।

नवीन प्रातिशील विचारों के उदय का आवश्यक तथा मूल ग्रीत, उत्पादन के विकास तथा नयी उत्पादक शक्तियाँ और पुराने पड़े गये उत्पादन सम्बन्धों के बीच अन्तर्विरोधों में तेजो है। मनुष्यों के भौतिक जीवन में निश्चित अन्तर्विरोधों के आधार पर उदित होकर यह नये प्रातिशील विचार समाज की प्रातिशील शक्तियों के हाथ में ऐसा अस्त्र बन जाते हैं जिनका प्रयोग इन अन्तर्विरोधों का समाधान करने में किया जाता है। यह नवीन प्रातिशील विचार जनता की समाज के समाज प्रस्तुत समस्याओं का समाधान करने के लिए उभर करे हैं।

प्रातिशील विचारधारा में शक्ति जनता की विशेष रूप से प्रभावान्वित करने की शक्ति होती है। क्योंकि ये विचारधारा

शोणित, पीड़ा तथा श्रमियों के वास्तविक हितों की अभिव्यक्ति करती है। परन्तु यह कार्य स्वयं विचारधारा ही नहीं कर देती। यह कार्य कोष पीढ़ियों के जड़ जमाये हुए पुराने विचारों और नवीन विचारों के मध्य मोक्षार्थ संघर्ष का परिणाम होता है। फलतः सामाजिक चेतना का हम मनोवैज्ञानिक भी होता है। तभी तो ए० जी० युंग ने मानव चेतना के दो रूप- व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वीकारते हुए सामूहिक चेतना की नैतिक प्रतिमानों, सामाजिक विचारों, सामाजिक चर्यों, सामाजिक विश्वासों के सम्बन्धित बताया। इस सामूहिक चेतना का आधार भी सामूहिक अकेल के आप-विषय होते हैं। आप विषय जैसा प्रतीति अपने जीवन्तता से देने पर अर्थात् खूब या मृत हो जाने पर सामाजिक रूढ़ियों और सामाजिक विचारों बाधित के रूप में शेष रह जाते हैं। संक्षेप में, साहित्य या कला में सामाजिक चेतना तथा सांस्कृतिक चेतना की भी अभिव्यक्ति की अकेल की स्थिति में स्वीकारा किया गया है। अतः सामाजिक चेतना समाज के सम्बन्धित विभिन्न विचार, दृष्टिकोण, सिद्धान्त, धारणाओं एवं भावनाओं का सम्पूर्ण योग है जिसके द्वारा मनुष्य तथा समाज निरन्तर परिवर्तनशील जगत् का वास्तविक रूप है अन्तर्ग्रहण करता है।

कविवर केदारनाथ मिह का काव्य सामाजिक चेतना के जीत प्रती है। कविवर मिह अपने काव्य के माध्यम से लोक जीवन के पुड़े हुए हैं। इनके काव्य में मानव समाज के आन्तरिक तथा बाह्य तत्त्वों का सम्बन्धित चेतना फंकू होता है, जो सामाजिक चेतना का मूलधार है, क्योंकि सामाजिक चेतना मनुष्य की समाज के सम्बन्धित मानव मन की वह शक्ति है जिसके माध्यम से मानव समाज के आन्तरिक व बाह्य तत्त्वों का अनुभव

करता है तथा सामाजिक व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त करता है। इस आधार पर यदि कविवर गिंह को लोक केतना का कवि कहा जाये तो कोई अति-शयोक्ति नहीं होगी। लोक-केतना का कवि लोक की मिट्टी का गायक होता है। उसकी रग रग में अपने परिवेश की माटी की गन्ध समायी रहती है। माटी की यह गन्ध ही साहित्यिक अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। इसी विन्दु पर जाकर उसमें सामाजिक प्रतिबद्धता की भावना का स्वतः समावेश हो जाता है तथा ऐसा ही कवि केदार नाथ गिंह के काव्य में होता है। केदारनाथ गिंह को आरम्भिक भूमिका प्रणय प्रगोतकार की है। आप प्रणय में विरह की विभिन्न स्थितियों को रूपायित करने में प्तिहस्त रचना धर्मों की भूमिका का निर्वाह करते हैं। इनकी कविता का स्वर लोक केतना है सम्पृक्त सामाजिक केतना है। आपने अपने काव्य में लोक जीवन की अनुभूति को प्रगोत रूप में ढाला है। केदारनाथ गिंह ने प्रायः अपने प्रीतियों को लोक की अनुभूति तथा लोक खेदन से जोड़कर लोक प्रीतात्मक शैली में ढाला है। आपने द्वारा रचित 'बनारस' तथा 'माफकी का फुल' शीर्षक कविता सामाजिक केतना है अनु-प्राणित होने की स्वयं घोषणा करती है।

पूजा स्थलों की निष्प्रभ अर्थहीनता और उनके साथे में फस रहे आतंशवाद तथा उग्रवाद की काली विभीषिका का चित्रण, तीव्र अनुभूति, नवीन उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से धार्मिक पालण्ड, बर्बरता और धोखे पर कवि द्वारा किया गया बौद्धिक प्रहार, आज के भूरे मेड़ियों की कराल, लफलापाती जिल्हा और उनके तीक्ष्ण तथा फी दन्ताग्रों में अक्षय फरे हुए अज्ञान को दुर्दशा और निरीक्षा पर कवि का तिरस्कार पूर्वक कविता के माध्यम से कह उठना, आदि यथार्थ का मनोवैज्ञानिक चित्रण है, जो सामाजिक केतना का सशक्त रूप है। कविवर केदार नाथ गिंह की

रचनाएँ इस दृष्टि से सामाजिक चेतना से अनुप्राणित होने का दावा करती हैं।

श्री केदार नाथ गिह अपने रचना संग्रह में पूर्णोपास से समाजवाद की ओर संक्रमण करते हैं। इनकी अधिकांश रचनाएँ मानव नियति का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराती हैं। आपकी जीवन का स्तब्ध बोध है। मानव है दलाना की कल्पना इनके रचना संग्रह का दृष्ट है। इनकी रचनाओं के माध्यम से मानवता को वाच्य करने वाले प्रतिद्वन्द्व दलानों का विरोध करते हुए वर्तमान समय की सामाजिक तथा राजनीतिक विमंगलियों का यथार्थ की भूमि पर स्पष्ट तथा मार्मिक चित्रण करते हैं। वर्तमान समय की वास्तविकता, व्यवस्था में उत्पन्न दोष, सम्फाँता-तुप्पी, जनसाधारण की पीड़ा तथा जातिभेद संघर्ष का चित्रण साहित्यिक ढंग से कविवर गिह अपने वाच्य में करते हैं तथा यही आधार इस विश्वास को दृढ़ करता है कि केदारनाथ गिह की रचनाएँ सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं।

वक्त के अर्थ में केदारनाथ गिह पूर्णरूपेण राजा हैं। समाज के प्रतिशील तत्त्वों तथा मानव के उच्चार मूल्यों के निरीक्षण को जातिभेद अन्ति इनमें है। मानवीय मूल्यों के प्रति उनके मानस में कटु विश्वास, तीव्र लालसा तथा तीव्र आकर्षण है। यह मूल्य चेतना ही उनकी कविता का प्रेरक तत्त्व है।

केदारनाथ गिह ने ग्राम्य प्रकृति की सुविधों का आकलन यथार्थवादी धरातल पर दिया है। कृषक के लिए प्रकृति का आकर्षण, उनके जीवन के सुख-दुःख, आशा- निराशा से सम्बद्ध होकर उत्पन्न होता है। कवि ने इन्हीं भाव विधियों को नियोजित करने को चेष्टा

की है। 'धानों का गीत' तथा 'बादल जो' कवितारं इनके उदाहरण हैं। यथार्थवादी चित्रण होने के कारण कविवर सिंह भी इस वाशय से रचित रचनाओं में सामाजिक केतना का स्वर स्वरित है।

इस प्रकार संस्कृति, लोक संस्कृति, लोक जीवन, लोक परिवेश की अभिव्यक्ति की बारीकी, भाषा की सादगी तथा यथार्थ का मनोवैज्ञानिक चित्रण आदि बातें कविवर केदार नाथ सिंह को सामाजिक केता से आक्रान्त कवि घोषित करती हैं। आज के बौद्धिक तथा विज्ञान के युग में चिन्तन प्रधान साहित्य की प्रधानता तो है ही और इसी मानसिकता तथा युग प्रवृत्ति को परिलक्षित करते हुए केदारनाथ सिंह कुछ रक्तारं युगिन यार्थ से सम्बद्ध हैं। कतः सामाजिक केतना को स्वरित करने में सफल मो।

संक्षेप में इनके काव्य में स्वरित मानव तथा प्रकृति के प्रति गहरी आत्मोत्पत्ता एवं स्वेदनशीलता, विम्बों की एर्धकता, भाषा को सादगी आदि हिन्दी की नयी एपीक्षा के लिए मानक अभिव्यक्ति हैं। इनको अभिव्यक्तारं शोध के कई रूपों को अपने में समेटे हुए हैं। इसलिए इनके काव्य में मानव-मूल्यों के विश्लेषण के अनेक आयाग उभरे हैं। नयी कविता के इतिहास में ये एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

सहायक संपदगी गुण

सहायक सन्दर्भ साहित्य

- डा० अजय सिंह : वाधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्र० सं० १९७५ ई० ।
- .. : स्वच्छन्दतावाद : शायवाद, विश्व-विद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, १९७५ ई० ।
- .. : नवस्वच्छन्दतावाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्र० सं०, १९८७ ।
- .. : वाधुनिक हिन्दी कविता में नवस्वच्छन्दता-वाद (१९४३-७६), फटना वि०वि० की डी०एल्टि० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, १९८१ ।
- कमल राय : नयी गमीना, एम प्रकाशन, बलाहाबाद, नवीन सं०, वज्र, १९८२ ई० ।
- डा० अरविन्द : सप्तक काव्य, मैकमिलन इण्डिया प्रा०, मुंबई, प्र० सं० १९७६ ।

- बसोय : हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य,
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६७।
- .. : तीसरा सप्ताह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
कलकत्ता, दिल्ली, वाराणसी, प्र० सं०
१९६१।
- डा० इन्द्र नाथ प्रधान : आधुनिक कविता का मूल्यांकन, हिन्दी
भवन, जालन्धर और इलाहाबाद, प्र० सं०
१९६२।
- .. : आधुनिकता और हिन्दी आलोचना,
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
१९७५।
- .. : हिन्दी आलोचना : पहचान और परस,
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९७४।
- डा० उमाशंकर : आधुनिकता और काव्य में विश्व विधान,
आर्य बुक डिपो, नयी दिल्ली, प्र० सं०
- डा० उषा रानी : नयी कविता : पुनर्मूल्यांकन, रक्षा
प्रकाशन मंदिर, आगरा, प्र० सं० १९८०।
- रमिल बन्स : मार्क्सवाद क्या है?, पीपुल्स पब्लिशिंग
हाउस, दिल्ली, नवी सं० १९८३।

- डा० कमला प्रसाद पाण्डेय : शायवादीत्तर हिन्दी काव्य की गामा-
जिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि , रचना
प्रकाशन, इलाहाबाद , प्र० सं० १९७२ ।
- डा० कुमार विमल : आधुनिक हिन्दी काव्य , वर्त्ता प्रकाशन ,
वारा (बिहार) प्र० सं० १९६४ ।
- .. : शायवाद का गान्धेशास्त्रीय अध्ययन ,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली , प्र० सं० ,
१९७० ।
- .. : गान्धेशास्त्र के तत्त्व , राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली , प्र० सं० ।
- डा० कुंवर पाल सिंह : मार्क्सवादी गान्धेशास्त्र और हिन्दी
कथा साहित्य , धरती प्रकाशन, गंगा
शहर, बीकानेर , प्र० सं० १९८४ ।
- .. : हिन्दी उपन्यास : गामाजिक केना ,
पंक्षीत प्रकाशन, जयपुर, प्र० सं० ।
- डा० कृष्ण मुरारि मिश्र : आष बिम्ब और नयी कविता , राधा-
कृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली ,
प्र० सं० ।
- डा० कृष्ण बिहारी मिश्र : आधुनिक गामाजिक आन्दोलन और आधुनिक
हिन्दी साहित्य, आर्ज बुक डिपो, कराल
बाग, नयी दिल्ली , प्र० सं० १९७२ ।

- प्रो० के० सी० कुमार : साहित्य के नये धरातल : शंकर और
दिशार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,
प्र० सं०, १९८० ।
- डा० के० सी० नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक ग्रौत,
सरस्वती मंदिर, काशी, प्र० सं० २००४ वि०
- डा० के० सी० नाथ सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता में विम्व-विधान,
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०,
१९७९ ।
- .. : कल्पना और शयावाद, सं० प्रकाशन,
एलाहाबाद, प्र० सं० १९५७ ।
- .. : "कभी, बिल्कुल कभी" सम्पादना प्रकाशन,
लापुर, वि० सं० १९८० ।
- .. : "जमीन पक रही है" प्रकाशन संस्थान,
ब्लू० २२, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२,
तृ० सं० १९८२ ।
- .. : "यहाँ है देशी", राधाकृष्ण प्रकाशन,
दरियागंज, नयी दिल्ली, वि० सं० १९८४ ।
- .. : "काल में गारम", राजकमल प्रकाशन,
नयी दिल्ली, प्र० सं० १९८८ ।
- गिरिजा कुमार माथुर : नयी कविता : गीमार और सम्पादनार,
बनार प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ ।

- डा० गुलाब राय : काव्य के रूप , आत्माराम एण्ड सन्स,
कश्मीरी गेट , दिल्ली -६ , न० १० ,
१९५८ ।
- गजानन माधव मुक्तिबोध : नयी कविता का आत्म संघर्ष , राजकमल
प्रकाशन, नयी दिल्ली , प्र० १० ।
- .. : नये साहित्य का गान्धर्वशास्त्र ।
- डा० गोपाल कृष्ण ज्ञवाल : समाजशास्त्र, बागरा बुक स्टोर , बागरा,
प्र० १० , १९८२ ।
- डा० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द
धारा , हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
वाराणसी , दि० १० १९६९ ।
- डा० दशरथ ओझा : समीक्षाशास्त्र, राजपाल एण्ड सन्स ,
दिल्ली, दि० १० , १९५७ ।
- डा० देवराज : आधुनिक गमीक्षा, राजपाल एण्ड सन्स ,
दिल्ली , १९५४ ।
- डा० नरेन्द्र देव वर्मा : प्रयोगवाद , उत्सुधान प्रकाशन, आचार्य
नगर, कानपुर, प्र० १० १९६४ ।
- .. : नयी कविता : सिद्धान्त और एजेंडा ,
बाणो प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली-६
प्र० १० १९७८ ।

- डा० नन्द पुलारे बाजपेयी : नयी कविता , मैक्सिमिल कंपनी आफ
इण्डिया लि०, दिल्ली , प्र० सं० १९७६ ।
- .. : नयासाहित्य : नये प्रश्न , विद्या मंदिर,
बनारस , १९५६ ।
- .. : आधुनिक साहित्य , भारतीय मण्डार ,
लीडर प्रेस , इलाहाबाद , २०१३ वि०
- डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ,
नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, वि० सं०,
जनवरी , १९६२ ।
- .. : काव्य में उदात्त तत्त्व , राजपाल एण्ड
संस, दिल्ली , १९५८ ।
- .. : विचार और विश्लेषण , नैशनल पब्लि-
शिंग हाउस, दिल्ली, वि० सं० , १९६१ ।
- .. : मिथक और उनका साहित्य , नैशनल
पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली ,
प्र० सं० ।
- .. : साहित्य का समाजशास्त्र , नैशनल पब्लि-
शिंग हाउस , नयी दिल्ली , १९८२ ।

डा० नाम्बर सिंह

✓ : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ ,
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-१ ,
कुर्थ सं० १९६८ ।

..

: इतिहास और आलोचना , साहित्य
प्रकाशन, मिण्टी रोड, इलाहाबाद, १९६२ ।

..

कविता के नये प्रतिमान , राजकमल प्रकाशन ,
दिल्ली , प्र० सं० १९६८ ।

..

: दूसरी परम्परा की खोज , राजकमल
प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं० ।

..

✓ : श्यामावाद , राजकमल प्रकाशन, दरियागंज,
दिल्ली , प्र० सं० ।

डा० निर्मला जैन

: आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन ,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली , प्र० सं० १९८० ।

डा० प्रेम शंकर

: भक्ति काव्य की सामाजिक सांस्कृतिक काना ,
मैकमिलन , दिल्ली , १९७६ ।

..

: नयी कविता की भूमिका , नेशनल पब्लिशिंग
हाउस, दरियागंज, दिल्ली , प्र० सं० १९८८ ।

..

: एजेंट और समीक्षा , प्रकाशन संस्थान ,
नयी दिल्ली , प्र० सं० १९८७ ।

- डा० प्रेम लंकर : हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य , म० प्र०
हिन्दी ग्रन्थ अकादमी , प्र० म० १९७४ ।
- .. : कामायनी का रत्ना लंकार , भारती
मण्डार, लीडर प्रेस , एलाहाबाद , प्र० म०,
१९७७ ।
- डा० फूल शिखरी शर्मा : हिन्दी की स्वच्छन्द समीक्षा , ग्रन्थायतन
प्रकाशन, अलीगढ़ , १९८२ ।
- .. : समीक्षा और फौविसैण्ड , प्रेस लिमिटेड,
अलीगढ़ , १९८५ ।
- डा० बुद्धदेव शर्मा नीहार : विश्व ५ वि निराला , रीगल बुक डिपो,
नयी मद्रक, दिल्ली , प्र० म०, १९७५ ।
- .. : ग्लोब और कविता , मोरा प्रकाशन ,
मंसिर रोड, अलीगढ़
- .. : मानवीय ग्लोबवाद क्या है? ग्लोबिज्म ,
मोरा प्रकाशन, मंसिर रोड, अलीगढ़
- डा० बच्चन सिंह ✓ : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास ,
लोक भारती प्रकाशन, एलाहाबाद , प्र०
म० , १९७८ ।
- वि० अफनाबी ✓ : मार्क्सवादी दर्शन , प्रगति प्रकाशन , मारको,
प्र० म० ।

- व० कैलेश चौर व० कौवालयोन : ऐतिहासिक मौलिकवाद , प्राति प्रकाशन,
मास्को , प्र० सं० १९७४ ।
- व० ग० अफनागैव : वैज्ञानिक कमनियुज्म के मूल सिद्धान्त ,
प्राति प्रकाशन, मास्को , प्र० सं० १९७० ।
- डा० खीन्द्र भ्रमर : खीन्द्र भ्रमर के गीत, साहित्य भवन , ✓
मा० लि० इलाहाबाद, १९६३ ।
- .. : समकालीन हिन्दी कविता , राजेश ✓
प्रकाशन, दिल्ली- ५१ , प्र० सं० १९७२ ।
- .. : हिन्दी के आधुनिक कवि , भारती ✓
साहित्य मंदिर, दिल्ली , प्र० सं० ,
१९६४ ।
- डा० रमेश कुन्तल मेघ : अथातः गान्धर्व जिज्ञासा , मेकमिलन
कम्पनी आफ इण्डिया लि० , नयी
दिल्ली , प्र० सं० १९७७ ।
- डा० रामविलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली , प्र० सं० ।
- .. : लोक जीवन और साहित्य
- .. : भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद,
राज कमल प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली,
प्र० सं० ।

- डा० रामदत्त मिश्र : हिन्दी समीक्षा ; स्वरूप और मर्म ,
मैकमिलन, दिल्ली, प्र० नं० १९७४ ।
- डा० रामदत्त मिश्र : हिन्दी कविता : आधुनिक आयास , ✓
वाणी प्रकाशन, दिल्ली- १९७८ ।
- ✓डा० रामधारी सिंह दिनकर : काव्य की भूमिका , उदयाचल ,
पटना , प्र० नं० १९५८ ।
- डा० रामेश्वर लाल सण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और
सौन्दर्य , नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दरियागंज , दिल्ली , प्र० नं० , १९५८ ।
- .. : समीक्षा के वातावरण , नटराज पब्लिशिंग
हाउस, करनाल , १९८३ ।
- .. : आधुनिक साहित्य : कविता पर
अध्ययन पद है डा० रामेश्वर लाल सण्डेलवाल
का अभिमानांकन, २३, २४, २५ जनवरी १९८०
कारी विद्यापीठ ।
- डा० रामेश्वर दयाल ✓: मध्यकालीन कृष्ण भक्ति परंपरा और लोक-
संस्कृति, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली ,
प्र० नं० ।
- सलिल शुक्ल : नया काव्य : नये मूल्य , मैकमिलन कं०
बाफ इण्डिया, डि० नं० १९७६ ।

- लेनिन, कार्ल मार्क्स, एंगेल्स : अन्धवात्सुक्य भौतिकवाद , प्रगति प्रकाशन,
मास्को , १९७७ ।
- डा० लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान , भारती प्रेस,
प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० ।
- शिवदान सिंह चौहान : बालीकना के गिद्वान्त , राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली , प्र० सं० १९६० ।
- .. : साहित्यानुशीलन , आत्मा राम बण्ड
सम, दिल्ली, १९५५ ।
- डा० विमल कुमार मिश्र : प्रगतिवाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ,
प्र० सं० , १९६६ ।
- .. : साहित्य और सामाजिक मन्दर्भ , कला
प्रकाशन , दिल्ली , प्र० सं० १९७७ ।
- .. : मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन ; इतिहास
तथा सिद्धान्त , मोपाल , प्र० सं० ,
१९७३ ।
- .. : दर्शन, साहित्य और समाज , राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली , प्र० सं० ।
- डा० विमल प्रसाद सिंह : वापुनिक परिवर्तन और नवलेखन ,
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
१९७० ।

सुमित्रानन्दन फा.

: वास्तुनिक कवि , हिन्दी साहित्य
सम्बन्ध , प्रयाग , सातवां संस्करण ।

शेखरलाल

: मार्क्सवादी लेनिनवादी दर्शन , लोक
साहित्य प्रकाशन , लखनऊ , प्र० सं०
१९८१ ।

डा० सुधीर पवार

: नयी कविता का वैचारिक आधार ,
राधा कृष्ण प्रकाशन , दिल्ली , प्र०
सं० , १९८७ ।

डा० सर्वश कुलौष्ठ

: हिन्दी कविता और लोक संस्कृति ,
विश्वविद्यालय प्रकाशन , बॉक , वाराणसी ,
प्र० सं० , १९७७ ।

डा० हरिवंश राय वच्चन,

: समकालीन हिन्दी साहित्य , साहित्य

डा० नगेन्द्र शर्मा भारतभूषण

अकादमी , नयी दिल्ली , प्र० सं० ।

अग्रवाल

हिन्दी कौश

- ✓ ए० कलिका प्रसाद : वृहत् हिन्दी कौश , ज्ञानमण्डल
लि०, वाराणसी , तृतीय संस्करण ।
- ए० डा० नरेन्द्र : मानविकी पारिभाषिक कौश (साहित्य
सण्ड) , राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०,
दिल्ली , १९६५ ।
- ए० डा० प्रीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कौश भाग १
(पारिभाषिक शब्दावली) ज्ञान
मण्डल लि० वाराणसी , पि० ए० ।
- .. : हिन्दी साहित्य कौश भाग २
(ना० शब्दावली) , ज्ञान मण्डल लि०
वाराणसी , प्र० ए०
- ए० डा० हरदेव बाहरी : वृहत् द्वितीय हिन्दी कौश भाग १, २
ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी , १९६६ ।
- ए० डा० यामुन्दर दास : हिन्दी शब्द मगर
- ए० बि० ना० श्रीवास्तव : हिन्दी राष्ट्रभाषा कौश

पत्र-पत्रिकार

कान्तिका : काव्यालोचना , अंक १ , पटना , जनवरी, १९५४ ई० ।

जालीना : श्री डा० नाम्दार सिंह , दिल्ली

ज्योत्स्ना : श्री विवेन्द्र नारायण , पटना

नर्मधारा : श्री उदयराज सिंह, पटना , अप्रैल, मई १९५५ ।

दस्तावेज : श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी , गोरखपुर ।

साहित्य : (नलि स्मृति अंक) अक्टू० १९५९ ।

साहित्यप्रतिभा : श्री हृदयनारायण सिंह, जौनपुर ।

ENGLISH BOOKS

- Art and Social Life** : G.V. Plekhanov, Moscow,
Progress Publishers, First
Printing, 1967.
- Biographia Literaria** : S.T. Coleridge, London,
J.M. & Sons, Lt.d., 1949.
- Dictionary of Philosophy** : Edited by I. Fraev,
Progress Publication, Moscow,
first print, 1969.
- Marxist, Leninist ,Aesthetics
and Arts** : Progress Publishers, Moscow,
1980
- On Socialist Ideology and
Culture** : Lenin
Progress Publishers, Moscow,
1962.
- Principles of Literary
Criticism.** : I.A. Richards,
Routledge & Kegan Paul Ltd.
1952.
- On Marx's Capital** : Engels
Progress Publishers, Moscow,
1955.
- Romanticism Imagination** : E.J. Furlong, George Allen
& Unwin, New York, 1961.
- Romanticism** : Seillier, Ernest, New York
1929.
- Seven Essays on life and
Literature** : Boris Paukin
Progress Publishers, Moscow.
- The Romanticism Imagination** : C.M. Bowra
Oxford University Press,
London, 1961.

- The Poetic Image** : C.D. Lewis
London , 1947.
- The Decline and fall of
the Romantic Ideal** : F.L. Lucas
Cambridge, 1963.
- The fundamental of Dialectics** Yu .A. Kharin
Progress Publishers, Moscow.
1981.
- The Psychology of Phantasy** : I. Reset
Progress Publishers, Moscow,
1984.

DICTIONARIES AND ENCYCLOPAEDIA

Chamber's Twentieth Century , Ed. William Geddie,
Allied Publishers, Bombay,
Revised Edition.

Dictionary of World Literary Terms , Ed. T. Shipley, George
Allen and Unwin Ltd. Ruskin
House, Museum Street, Great
Britain, First Ed.

Dictionary of Philosophy , Ed. I. Prelov
Progress Publishers, Moscow,
1967.

The Macmillan Everyman's Encyclopaedia , Fourth Ed. The
Macmillan Co. New York,
1959.

The Reader's Encyclopaedia (An Encyclopaedia of World
Literature & the Arts)
Ed. William Rose Benet, Thomas
Crowell Co. New York, Third
Printing, Dec. 1951.